॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# प्रश्नोपनिषद्

प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेदके पिप्पलाद-शाखीय ब्राह्मणभागके अन्तर्गत है। इस उपनिषद्में पिप्पलाद ऋषिने सुकेशा आदि छः ऋषियोंके छः प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर दिया है; इसलिये इसका नाम प्रश्नोपनिषद् हो गया।

## शान्तिपाठ

**ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥**
**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।**
**स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥**
**ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!**

**देवाः**=हे देवगण!; **( वयम् ) यजत्राः ( सन्तः )**=हम भगवान्का यजन (आराधन) करते हुए; **कर्णेभिः**=कानोंसे; **भद्रम्**=कल्याणमय वचन; **शृणुयाम**=सुनें; **अक्षभिः**=नेत्रोंसे; **भद्रम्**=कल्याण (ही); **पश्येम**=देखें; **स्थिरैः**=सुदृढ़; **अङ्गैः**=अङ्गों; **तनूभिः**=एवं शरीरसे; **तुष्टुवांसः ( वयम् )**=भगवान्की स्तुति करते हुए हमलोग; **यत्**=जो; **आयुः**=आयु; **देवहितम्**=आराध्यदेव परमात्माके काम आ सके; **( तत् )**=उसका; **व्यशेम**=उपभोग करें; **वृद्धश्रवाः**=सब ओर फैले हुए सुयशवाले; **इन्द्रः**=इन्द्र; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति दधातु**=कल्याणका पोषण करें; **विश्ववेदाः**=सम्पूर्ण विश्वका ज्ञान रखनेवाले; **पूषा**=पूषा; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति ( दधातु )**=कल्याणका पोषण करें; **अरिष्टनेमिः**=अरिष्टोंको मिटानेके लिये चक्रसदृश शक्तिशाली; **तार्क्ष्यः**=गरुडदेव; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति ( दधातु )**=कल्याणका पोषण करें; [**तथा**=तथा;] **बृहस्पतिः**=(बुद्धिके स्वामी) बृहस्पति भी; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति ( दधातु )**=कल्याणकी पुष्टि करें; **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः**=परमात्मन्! हमारे त्रिविध तापकी शान्ति हो।

**व्याख्या**—गुरुके यहाँ अध्ययन करनेवाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्रका कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओंसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे देवगण! हम अपने कानोंसे शुभ—कल्याणकारी वचन ही सुनें। निन्दा, चुगली, गाली या दूसरी-दूसरी पापकी बातें हमारे कानोंमें न पड़ें और हमारा अपना जीवन यजन-परायण हो—हम सदा भगवान्की आराधनामें ही लगे रहें। न केवल कानोंसे सुनें, नेत्रोंसे भी हम सदा कल्याणका ही दर्शन करें। किसी अमङ्गलकारी अथवा पतनकी ओर ले जानेवाले दृश्योंकी ओर हमारी दृष्टिका आकर्षण कभी न हो। हमारा शरीर, हमारा एक-एक अवयव सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हो—वह भी इसलिये कि हम उनके द्वारा भगवान्का स्तवन करते रहें। हमारी आयु भोग-विलास या प्रमादमें न बीते। हमें ऐसी आयु मिले, जो भगवान्के कार्यमें आ सके। [देवता हमारी प्रत्येक इन्द्रियमें व्याप्त रहकर उसका संरक्षण और संचालन करते हैं। उनके अनुकूल रहनेसे हमारी इन्द्रियाँ सुगमतापूर्वक सन्मार्गमें लगी रह सकती हैं; अतः उनसे प्रार्थना करनी उचित ही है।] जिनका सुयश सब ओर फैला है, वे देवराज इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, अरिष्टनिवारक तार्क्ष्य (गरुड) और बुद्धिके स्वामी बृहस्पति—ये सभी देवता भगवान्की दिव्य विभूतियाँ हैं। ये सदा हमारे कल्याणका पोषण करें। इनकी कृपासे हमारे साथ प्राणिमात्रका कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारके तापोंकी शान्ति हो।

# प्रथम प्रश्न

**ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः॥ १॥**

**ॐ**=ॐ इस परमात्माके नामका स्मरण करके उपनिषद्का आरम्भ करते हैं; **भारद्वाजः सुकेशा**=भरद्वाज-पुत्र सुकेशा; **च शैब्यः सत्यकामः**=और शिबिकुमार सत्यकाम; **च गार्ग्यः सौर्यायणी**=तथा गर्ग-गोत्रमें उत्पन्न सौर्यायणी; **च कौसल्यः आश्वलायनः**=एवं कोसलदेशीय आश्वलायन; **च वैदर्भिः भार्गवः**=तथा विदर्भनिवासी भार्गव; **(च) कात्यायनः कबन्धी**=और कत्य ऋषिका प्रपौत्र कबन्धी; **ते एते ह ब्रह्मपराः**=वे ये छः प्रसिद्ध ऋषि जो कि वेदपरायण (और); **ब्रह्मनिष्ठाः**=वेदमें निष्ठा रखनेवाले थे; **ते ह**=वे सब-के-सब; **परम् ब्रह्म**=परब्रह्मकी; **अन्वेषमाणाः**=खोज करते हुए; **एषः ह वै तत् सर्वम् वक्ष्यति इति**=यह समझकर कि ये (पिप्पलाद ऋषि) निश्चय ही उस ब्रह्मके विषयमें सारी बातें बतायेंगे; **समित्पाणयः**=हाथमें समिधा लिये हुए; **भगवन्तम् पिप्पलादम् उपसन्नाः**=भगवान् पिप्पलाद ऋषिके पास गये॥ १॥

**व्याख्या**—ओंकारस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्माका स्मरण करके उपनिषद्का आरम्भ किया जाता है। प्रसिद्ध है कि भरद्वाजके पुत्र सुकेशा, शिबिकुमार सत्यकाम, गर्गगोत्रमें उत्पन्न सौर्यायणी, कोसलदेश-निवासी आश्वलायन, विदर्भदेशीय भार्गव और कत्यके प्रपौत्र कबन्धी—ये वेदाभ्यासके परायण और ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् श्रद्धापूर्वक वेदानुकूल आचरण करनेवाले थे। एक बार ये छहों ऋषि परब्रह्म परमेश्वरकी जिज्ञासासे एक साथ बाहर निकले। इन्होंने सुना था कि पिप्पलाद ऋषि इस विषयको विशेषरूपसे जानते हैं; अतः यह सोचकर कि 'परब्रह्मके सम्बन्धमें हम जो कुछ जानना चाहते हैं, वह सब वे हमें बता देंगे' वे लोग जिज्ञासुके वेषमें हाथमें समिधा लिये हुए महर्षि पिप्पलादके पास गये॥ १॥

**तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति॥ २॥**

**तान् सः ह**=उन सुकेशा आदि ऋषियोंसे वे प्रसिद्ध; **ऋषिः उवाच**=(पिप्पलाद) ऋषि बोले—; **भूयः एव**=तुमलोग पुनः; **श्रद्धया**=श्रद्धाके साथ; **ब्रह्मचर्येण**=ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए; (और) **तपसा**=तपस्यापूर्वक; **संवत्सरम्**=एक वर्षतक (यहाँ); **संवत्स्यथ**=भलीभाँति निवास करो; **यथाकामम्**=(उसके बाद) अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार; **प्रश्नान् पृच्छत**=प्रश्न पूछना; **यदि विज्ञास्यामः**=यदि (तुम्हारी पूछी हुई बातोंको) मैं जानता होऊँगा; **ह सर्वम्**=तो निस्सन्देह वे सब बातें; **वः वक्ष्यामः इति**=तुमलोगोंको बताऊँगा॥ २॥

**व्याख्या**—उपर्युक्त छहों ऋषियोंको परब्रह्मकी जिज्ञासासे अपने पास आया देखकर महर्षि पिप्पलादने उनसे कहा—तुमलोग तपस्वी हो, तुमने ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़े हैं; तथापि मेरे आश्रममें रहकर पुनः एक वर्षतक श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए तपश्चर्या करो। उसके बाद तुमलोग जो चाहो, मुझसे प्रश्न करना। यदि तुम्हारे पूछे हुए विषयका मुझे ज्ञान होगा तो निस्सन्देह तुम्हें सब बातें भलीभाँति समझाकर बतलाऊँगा॥ २॥

**सम्बन्ध**—*ऋषिके आज्ञानुसार सबने श्रद्धा, ब्रह्मचर्य और तपस्याके साथ विधिपूर्वक एक वर्षतक वहाँ निवास किया।*

**अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ। भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति॥ ३॥**

**अथ**=तदनन्तर (उनमेंसे); **कात्यायनः कबन्धी**=कत्य ऋषिके प्रपौत्र कबन्धीने; **उपेत्य**=(पिप्पलाद ऋषिके) पास जाकर; **पप्रच्छ**=पूछा—; **भगवन्**=भगवन्!; **कुतः ह वै**=किस प्रसिद्ध और सुनिश्चित कारणविशेषसे; **इमाः प्रजाः**=यह सम्पूर्ण प्रजा; **प्रजायन्ते**=नाना रूपोंमें उत्पन्न होती है; **इति**=यह मेरा प्रश्न है॥ ३॥

**व्याख्या**—महर्षि पिप्पलादकी आज्ञा पाकर वे लोग श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए वहीं तपश्चर्या करने लगे। महर्षिकी देख-रेखमें संयमपूर्वक रहकर एक वर्षतक उन्होंने त्यागमय जीवन बिताया। उसके बाद वे सब पुनः पिप्पलाद ऋषिके पास गये तथा उनमेंसे सर्वप्रथम कत्य ऋषिके प्रपौत्र कबन्धीने श्रद्धा और विनयपूर्वक पूछा—'भगवन्! जिससे ये सम्पूर्ण चराचर जीव नाना रूपोंमें उत्पन्न होते हैं, जो इनका सुनिश्चित परम कारण है, वह कौन है?'॥ ३॥

**तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति॥ ४॥**

**तस्मै सः ह उवाच**=उससे वे प्रसिद्ध महर्षि बोले—; **वै प्रजाकामः**=निश्चय ही प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छावाला (जो); **प्रजापतिः**=प्रजापति है; **सः तपः अतप्यत**=उसने तप किया; **स तपः तप्त्वा**=उसने तपस्या करके (सृष्टि आरम्भ की, उस समय पहले); **सः**=उसने; **रयिम् च**=एक तो रयि (चन्द्रमा) तथा; **प्राणम् च**=दूसरा प्राण (सूर्य) भी; **इति मिथुनम्**=यह जोड़ा; **उत्पादयते**=उत्पन्न किया; **एतौ मे**=(इन्हें उत्पन्न करनेका उद्देश्य यह था) कि ये (दोनों मिलकर) मेरी; **बहुधा**=नाना प्रकारकी; **प्रजाः**=प्रजाओंको; **करिष्यतः इति**=उत्पन्न करेंगे॥ ४॥

**व्याख्या**—कबन्धी ऋषिका यह प्रश्न सुनकर महर्षि पिप्पलाद बोले—हे कात्यायन! यह बात वेदोंमें प्रसिद्ध है कि सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी परमेश्वरको सृष्टिके आदिमें जब प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छा हुई तो उन्होंने संकल्परूप तप किया। तपसे उन्होंने सर्वप्रथम रयि और प्राण—इन दोनोंका एक जोड़ा उत्पन्न किया। उसे उत्पन्न करनेका उद्देश्य यह था कि ये दोनों मिलकर मेरे लिये नाना प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न करेंगे। इस मन्त्रमें सबको जीवन प्रदान करने-वाली जो समष्टि जीवनी-शक्ति है, उसे ही 'प्राण' नाम दिया गया है। इस जीवनी-शक्तिसे ही प्रकृतिके स्थूल स्वरूपमें—समस्त पदार्थोंमें जीवन, स्थिति और यथा-योग्य सामञ्जस्य आता है एवं स्थूल भूत-समुदायका नाम 'रयि' रखा गया है, जो प्राणरूप जीवनी-शक्तिसे अनुप्राणित होकर कार्यक्षम होता है। प्राण चेतना है, रयि शक्ति या आकृति है। धनात्मक और ऋणात्मक दो तत्त्वोंकी भाँति प्राण और रयिके संयोगसे ही सृष्टिका समस्त कार्य सम्पन्न होता है। इन्हींको अन्यत्र अग्नि और सोमके एवं पुरुष तथा प्रकृतिके नामसे भी कहा गया है॥ ४॥

**आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः॥ ५॥**

**ह**=यह निश्चय है कि; **आदित्यः वै**=सूर्य ही; **प्राणः**=प्राण हैं (और); **चन्द्रमाः एव**=चन्द्रमा ही; **रयिः**=रयि है; **यत् मूर्तम् च**=जो कुछ आकारवाला है (पृथ्वी, जल और तेज); **अमूर्तम् च**=और जो आकाररहित है (आकाश और वायु); **एतत् सर्वम् वै**=यह सभी कुछ; **रयिः**=रयि है; **तस्मात्**=इसलिये; **मूर्तिः एव**=मूर्तमात्र ही अर्थात् देखने तथा जाननेमें आनेवाली सभी वस्तुएँ; **रयिः**=रयि हैं॥ ५॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें उपर्युक्त प्राण और रयिका स्वरूप समझाया गया है। पिप्पलाद कहते हैं कि यह दीखनेवाला सम्पूर्ण जगत् प्राण और रयि—इन दोनों तत्त्वोंके संयोग या सम्मिश्रणसे बना है; इसलिये यद्यपि इन्हें पृथक्-पृथक् करके नहीं बताया जा सकता, तथापि तुम इस प्रकार समझो—यह सूर्य, जो हमें प्रत्यक्ष दिखलायी देता है, यही प्राण है; क्योंकि इसीमें सबको जीवन प्रदान करनेवाली चेतना-शक्तिकी प्रधानता और अधिकता है। यह सूर्य उस सूक्ष्म जीवनी-शक्तिका घनीभूत स्वरूप है। उसी प्रकार यह चन्द्रमा ही 'रयि' है; क्योंकि इसमें स्थूल तत्त्वोंको पुष्ट करनेवाली भूत-तन्मात्राओंकी ही अधिकता है। समस्त प्राणियोंके स्थूल-शरीरोंका पोषण इस चन्द्रमाकी शक्तिको पाकर ही होता है। हमारे शरीरोंमें ये दोनों शक्तियाँ प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गमें व्याप्त हैं। उनमें जीवनी-शक्तिका सम्बन्ध सूर्यसे है और मांस, मेद आदि स्थूल तत्त्वोंका सम्बन्ध चन्द्रमासे है॥ ५॥

**अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते। यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते॥ ६॥**

**अथ**=रात्रिके अनन्तर; **उदयन्**=उदय होता हुआ; **आदित्यः**=सूर्य; **यत् प्राचीम् दिशम्**=जो पूर्व दिशामें; **प्रविशति**=प्रवेश करता है; **तेन प्राच्यान् प्राणान्**=उससे पूर्व दिशाके प्राणोंको; **रश्मिषु**=अपनी किरणोंमें; **संनिधत्ते**=धारण करता है (उसी प्रकार); **यत् दक्षिणाम्**=जो दक्षिण दिशाको; **यत् प्रतीचीम्**=जो पश्चिम दिशाको; **यत् उदीचीम्**=जो उत्तर दिशाको; **यत् अधः**=जो नीचेके लोकोंको; **यत् ऊर्ध्वम्**=जो ऊपरके लोकोंको; **यत् अन्तरा दिशः**=जो दिशाओंके बीचके भागों (कोणों)-को (और); **यत् सर्वम्**=जो अन्य सबको; **प्रकाशयति**=प्रकाशित करता है; **तेन सर्वान् प्राणान्**=उससे समस्त प्राणोंको अर्थात् सम्पूर्ण जगत्के प्राणोंको; **रश्मिषु संनिधत्ते**=अपनी किरणोंमें धारण करता है॥ ६॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरोंमें जो जीवनी-शक्ति है, उसके साथ सूर्यका सम्बन्ध दिखलाया गया है। भाव यह है कि रात्रिके बाद जब सूर्य उदय होकर पूर्वदिशामें अपना प्रकाश फैलाता है, उस समय वहाँके प्राणियोंके प्राणोंको अपनी किरणोंमें धारण करता है अर्थात् उनकी जीवनी-शक्तिका सूर्यकी किरणोंसे सम्बन्ध होकर उसमें नवीन स्फूर्ति आ जाती है। उसी प्रकार जिस समय जिस दिशामें जहाँ-जहाँ सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है, वहाँ-वहाँके प्राणियोंको स्फूर्ति देता रहता है; अतः सूर्य ही समस्त प्राणियोंका प्राण है॥ ६॥

**स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते। तदेतदृचाभ्युक्तम्॥ ७॥**

**सः एषः**=वह यह सूर्य ही; **उदयते**=उदय होता है; **वैश्वानरः अग्निः**=(जो कि) वैश्वानर अग्नि (जठराग्नि) और; **विश्वरूपः प्राणः**=विश्वरूप प्राण है; **तत् एतत्**=वही यह बात; **ऋचा**=ऋचाद्वारा; **अभ्युक्तम्**=आगे कही गयी है॥ ७॥

**व्याख्या**—प्राणियोंके शरीरमें जो वैश्वानर नामसे कही जानेवाली जठराग्नि है, जिससे अन्नका पाचन होता है (गीता १५।१४), वह सूर्यका ही अंश है; अतः सूर्य ही है। तथा जो प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान—इन पाँच रूपोंमें विभक्त प्राण है, वह भी इस उदय होनेवाले सूर्यका ही अंश है; अतः सूर्य ही है। यही बात अगली ऋचाद्वारा समझायी गयी है॥ ७॥

**विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।**
**सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥ ८॥**

**विश्वरूपम्**=सम्पूर्ण रूपोंके केन्द्र; **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ; **परायणम्**=सर्वाधार; **ज्योतिः**=प्रकाशमय; **तपन्तम्**=तपते हुए; **हरिणम्**=किरणोंवाले सूर्यको; **एकम्**=अद्वितीय (बतलाते हैं); **एषः**=यह; **सहस्त्ररश्मिः**=सहस्त्रों किरणोंवाला; **सूर्यः**=सूर्य; **शतधा वर्तमानः**=सैकड़ों प्रकारसे बर्तता हुआ; **प्रजानाम्**=समस्त जीवोंका; **प्राणः**=प्राण (जीवनदाता) होकर; **उदयति**=उदय होता है॥ ८॥

**व्याख्या**—इस सूर्यके तत्त्वको जाननेवालोंका कहना है कि यह किरणजालसे मण्डित एवं प्रकाशमय, तपता हुआ सूर्य विश्वके समस्त रूपोंका केन्द्र है। सभी रूप (रंग और आकृतियाँ) सूर्यसे उत्पन्न और प्रकाशित होते हैं। यह सविता ही सबका उत्पत्तिस्थान है और यही सबकी जीवन-ज्योतिका मूलस्त्रोत है। यह सर्वज्ञ और सर्वाधार है, वैश्वानर अग्नि और प्राण-शक्तिके रूपमें सर्वत्र व्याप्त है और सबको धारण किये हुए है। समस्त जगत्का प्राणरूप सूर्य एक ही है—इसके समान इस जगत्में दूसरी कोई भी जीवनी-शक्ति नहीं है। यह सहस्त्रों किरणोंवाला सूर्य हमारे सैकड़ों प्रकारके व्यवहार सिद्ध करता हुआ उदय होता है। जगत्में उष्णता और प्रकाश फैलाना, सबको जीवन प्रदान करना, ऋतुओंका परिवर्तन करना आदि हमारी सैकड़ों प्रकारकी आवश्यकताओंको पूर्ण करता हुआ सम्पूर्ण सृष्टिका जीवन-दाता प्राण ही सूर्यके रूपमें उदित होता है॥ ८॥

**सम्बन्ध**—*इस प्रकार यहाँतक कात्यायन कबन्धीके प्रश्नानुसार संक्षेपमें यह बताया गया कि उस सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वरसे ही उसके सङ्कल्पद्वारा प्राण और रयिके संयोगसे इस सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति आदि होती है। अब इस प्राण-शक्ति और रयि-शक्तिके सम्बन्धसे परमेश्वरकी उपासनाका प्रकार और उसका फल बतलानेके लिये दूसरा प्रकरण आरम्भ करते हैं—*

**संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च। तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते। त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः॥ ९॥**

**संवत्सरः वै**=संवत्सर (बारह महीनोंवाला काल) ही; **प्रजापतिः**=प्रजापति है; **तस्य अयने**=उसके दो अयन हैं—; **दक्षिणम् च**=एक दक्षिण और; **उत्तरम् च**=दूसरा उत्तर; **तत् ये ह**=वहाँ मनुष्योंमें जो लोग निश्चयपूर्वक; **तत् इष्टापूर्ते वै**=(केवल) उन इष्ट और पूर्त कर्मोंको ही; **कृतम् इति**=करनेयोग्य कर्म मानकर (सकामभावसे); **उपासते**=उनकी उपासना करते हैं (उन्हींके अनुष्ठानमें लगे रहते हैं); **ते चान्द्रमसम्**=वे चन्द्रमाके; **लोकम् एव**=लोकको ही; **अभिजयन्ते**=जीतते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं (और); **ते एव**=वे ही; **पुनः आवर्तन्ते**=पुनः (वहाँसे) लौटकर आते हैं; **तस्मात् एते**=इसलिये ये; **प्रजाकामाः ऋषयः**=संतानकी कामनावाले ऋषिगण; **दक्षिणम् प्रतिपद्यन्ते**=दक्षिण (मार्ग)-को प्राप्त होते हैं; **ह एषः वै रयिः**=निस्सन्देह यही वह रयि है; **यः पितृयाणः**=जो 'पितृयान' नामक मार्ग है॥ ९॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें संवत्सरको परमात्माका प्रतीक बताकर उसके रयिस्थानीय भोग्य पदार्थोंकी उपासना और उसका फल बताते हैं। भाव यह है कि बारह महीनोंका यह संवत्सररूप काल ही मानो सृष्टिके स्वामी परमेश्वरका स्वरूप है। इसके दो अयन हैं—दक्षिण और उत्तर। दक्षिणायनके जो छः महीने हैं, जिनमें सूर्य दक्षिणकी ओर घूमता है—ये मानो इसके दक्षिण अङ्ग हैं और उत्तरायणके छः महीने ही उत्तर अङ्ग हैं। उनमें उत्तर अङ्ग तो प्राण है अर्थात् इस विश्वके आत्मारूप उस परमेश्वरका सर्वान्तर्यामी स्वरूप है और दक्षिण अङ्ग रयि अर्थात् उसका बाह्य भोग्य स्वरूप है। इस जगत्में जो संतानकी कामनावाले ऋषि स्वर्गादि सांसारिक भोगोंमें आसक्त हैं, वे यज्ञादिद्वारा देवताओंका पूजन करना, ब्राह्मण एवं श्रेष्ठ पुरुषोंका धनादिसे सत्कार करना, दुःखी प्राणियोंकी सेवा करना आदि इष्टकर्म तथा कुआँ, बावली, तालाब, बगीचा, धर्मशाला, विद्यालय, औषधालय, पुस्तकालय आदि लोकोपकारी चिरस्थायी स्मारकोंकी स्थापना करना आदि पूर्तकर्मोंको श्रेष्ठ समझते हैं और इनके फलस्वरूप इस लोक तथा परलोकके भोगोंके उद्देश्यसे इनकी उपासना अर्थात् विधिवत् अनुष्ठान करते हैं; यह उस संवत्सररूप परमेश्वरके दक्षिण अङ्गकी उपासना है। इसीको ईशावास्य-उपनिषद्ने असम्भूतिकी उपासनाके नामसे देव, पितर, मनुष्य आदि शरीरोंकी सेवा बताया है। इसके प्रभावसे वे चन्द्रलोकको प्राप्त होते हैं और वहाँ अपने कर्मोंका फल भोगकर पुनः इस लोकमें लौट आते हैं; यही पितृयाण मार्ग है॥ ९॥

**अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते। एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः॥ १०॥**

**अथ**=किंतु (जो); **तपसा**=तपस्याके साथ; **ब्रह्मचर्येण**=ब्रह्मचर्यपूर्वक (और); **श्रद्धया**=श्रद्धासे युक्त होकर; **विद्यया**=अध्यात्मविद्याके द्वारा; **आत्मानम्**=(सूर्यरूप) परमात्माकी; **अन्विष्य**=खोज करके (जीवन सार्थक करते हैं, वे); **उत्तरेण**=उत्तरायण-मार्गसे; **आदित्यम्**=सूर्यलोकको; **अभिजयन्ते**=जीत लेते हैं (प्राप्त करते हैं); **एतत् वै**=यह (सूर्य) ही; **प्राणानाम्**=प्राणोंका; **आयतनम्**=केन्द्र है; **एतत् अमृतम्**=यह अमृत (अविनाशी) और; **अभयम्**=निर्भय पद है; **एतत् परायणम्**=यह परमगति है; **एतस्मात्**=इससे; **न पुनः आवर्तन्ते**=पुनः लौटकर नहीं आते; **इति एषः**=इस प्रकार यह; **निरोधः**=निरोध (पुनरावृत्तिका निवारक) है; **तत् एषः**=इस बातको स्पष्ट करनेवाला यह (अगला); **श्लोकः**=श्लोक है॥ १०॥

**व्याख्या**—उपर्युक्त सकाम उपासकोंसे भिन्न जो कल्याणकामी साधक हैं, वे इन सांसारिक भोगोंकी अनित्यता और दुःखरूपताको समझकर इनसे सर्वथा विरक्त हो जाते हैं। वे श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए संयमके साथ त्यागमय जीवन बिताते हैं और अध्यात्मविद्याके द्वारा अर्थात् परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले किसी भी अनुकूल साधनद्वारा सबके आत्मस्वरूप परब्रह्म परमेश्वरकी निष्काम उपासना करते हैं। यह मानो उस

संवत्सररूप प्रजापतिके उत्तर अङ्गकी उपासना है। इसको ईशावास्य-उपनिषद्में सम्भूतिकी उपासना कहा गया है। इसके उपासक उत्तरायण-मार्गसे सूर्यलोकमें जाकर सूर्यके आत्मारूप परब्रह्म परमेश्वरको प्राप्त हो जाते हैं। यह सूर्य ही समस्त जगत्के प्राणोंका केन्द्र है। यही अमृत—अविनाशी और निर्भय पद है। यही परम गति है। इसे प्राप्त हुए महापुरुष फिर लौटकर नहीं आते। यह निरोध अर्थात् पुनर्जन्मको रोकनेवाला आत्यन्तिक प्रलय है। इस मन्त्रमें सूर्यको परमेश्वरका स्वरूप मानकर ही सब बातें कही गयी हैं। इसी बातको अगले मन्त्रमें स्पष्ट किया गया है॥ १०॥

**पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति॥ ११॥**

(कितने ही लोग तो इस सूर्यको)—**पञ्चपादम्**=पाँच चरणोंवाला; **पितरम्**=सबका पिता; **द्वादशाकृतिम्**=बारह आकृतियोंवाला; **पुरीषिणम्**=जलका उत्पादक; **दिवः परे अर्धे**=(और) स्वर्गलोकसे भी ऊपरके स्थानमें (स्थित); **आहुः**=बतलाते हैं; **अथ इमे**=तथा ये; **अन्ये उ**=दूसरे कितने ही लोग; **परे**=विशुद्ध; **सप्तचक्रे**=सात पहियोंवाले (और); **षडरे**=छः अरोंवाले (रथमें); **अर्पितम्**=बैठा हुआ (एवं); **विचक्षणम्**=सबको भलीभाँति जाननेवाला है; **इति आहुः**=ऐसा बतलाते हैं॥ ११॥

**व्याख्या**—परब्रह्म परमेश्वरके प्रत्यक्ष—दृष्टिगोचर स्वरूप इस सूर्यके विषयमें कितने ही तत्त्ववेत्ता तो यों कहते हैं कि इसके पाँच पैर हैं। अर्थात् छः ऋतुओंमेंसे हेमन्त और शिशिर—इन दो ऋतुओंकी एकता करके पाँच ऋतुओंको वे इस सूर्यके पाँच चरण बतलाते हैं तथा यह भी कहते हैं कि बारह महीने ही इसकी बारह आकृतियाँ अर्थात् बारह शरीर हैं। इसका स्थान स्वर्गलोकसे भी ऊँचा है। स्वर्गलोक भी इसीके आलोकसे प्रकाशित है। इस लोकमें जो जल बरसता है, उस जलकी उत्पत्ति इसीसे होती है। अतः सबको जलरूप जीवन प्रदान करनेवाला होनेसे यह सबका पिता है। दूसरे ज्ञानी पुरुषोंका कहना है कि लाल, पीले आदि सात रंगोंकी किरणोंसे युक्त तथा वसन्त आदि छः ऋतुओंके हेतुभूत इस विशुद्ध प्रकाशमय सूर्यमण्डलमें—जिसे सात चक्र एवं छः अरोंवाला रथ कहा गया है—बैठा हुआ इसका आत्मारूप, सबको भलीभाँति जाननेवाला सर्वज्ञ परमेश्वर ही उपास्य है। यह स्थूल नेत्रोंसे दिखायी देनेवाला सूर्यमण्डल उसका शरीर है। इसलिये यह उसीकी महिमा है॥ ११॥

**मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्॥ १२॥**

**मासः वै**=महीना ही; **प्रजापतिः**=प्रजापति है; **तस्य**=उसका; **कृष्णपक्षः एव**=कृष्णपक्ष ही; **रयिः**=रयि है और; **शुक्लः प्राणः**=शुक्लपक्ष प्राण है; **तस्मात्**=इसलिये; **एते ऋषयः**=ये (कल्याणकामी) ऋषिगण; **शुक्ले**=शुक्लपक्षमें (निष्कामभावसे); **इष्टम्**=यज्ञादि कर्तव्यकर्म; **कुर्वन्ति**=किया करते हैं; (तथा) **इतरे**=दूसरे (जो सांसारिक भोगोंको चाहते हैं); **इतरस्मिन्**=दूसरे पक्षमें—कृष्णपक्षमें (सकामभावसे यज्ञादि शुभकर्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं)॥ १२॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें महीनेको प्रजापतिका रूप देकर परमेश्वरकी कर्मोंद्वारा उपासना करनेका रहस्य बताया गया है। भाव यह है कि प्रत्येक महीना ही मानो प्रजापति है, उसमें कृष्णपक्षके पंद्रह दिन तो उस परमात्माका दाहिना अङ्ग हैं; इसे रयि (स्थूलभूत-समुदायका कारण) समझना चाहिये। यह उस परमेश्वरका शक्तिस्वरूप भोगमय रूप है और शुक्लपक्षके पंद्रह दिन ही मानो उत्तर अङ्ग हैं। यही प्राण अर्थात् सबको जीवन प्रदान करनेवाले परमात्माका सर्वान्तर्यामी रूप है। इसलिये जो कल्याणकामी ऋषि हैं, अर्थात् जो रयिस्थानीय भोग-पदार्थोंसे विरक्त होकर प्राणस्थानीय सर्वात्मरूप परब्रह्मको चाहनेवाले हैं, वे अपने समस्त शुभ कर्मोंको शुक्लपक्षमें करते हैं अर्थात् शुक्लपक्षस्थानीय प्राणाधार परब्रह्म परमेश्वरके अर्पण करके करते हैं—स्वयं उसका कोई फल नहीं चाहते; यही गीतोक्त कर्मयोग है। इनसे भिन्न जो भोगासक्त मनुष्य हैं, वे कृष्णपक्षमें अर्थात् कृष्णपक्ष-स्थानीय स्थूल पदार्थोंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे सब प्रकारके कर्म किया करते हैं। इनका वर्णन गीतामें '**स्वर्गपराः**' के नामसे हुआ है (गीता २।४२—४४)॥ १२॥

**अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते॥ १३॥**

**अहोरात्रः वै**=दिन और रातका जोड़ा ही; **प्रजापतिः**=प्रजापति है; **तस्य**=उसका; **अहः एव**=दिन ही; **प्राणः**=प्राण है (और); **रात्रिः एव**=रात्रि ही; **रयिः**=रयि है; **ये दिवा**=(अतः) जो दिनमें; **रत्या संयुज्यन्ते**=स्त्री-सहवास करते हैं; **एते**=ये लोग; **वै प्राणम्**=सचमुच अपने प्राणोंको ही; **प्रस्कन्दन्ति**=क्षीण करते हैं तथा (मनुष्य); **यत् रात्रौ**=जो रात्रिमें; **रत्या संयुज्यन्ते**=स्त्री-सहवास करते हैं; **तत् ब्रह्मचर्यम् एव**=वह ब्रह्मचर्य ही है॥ १३॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें दिन और रात्रिरूप चौबीस घंटेके कालरूपमें परमेश्वरके स्वरूपकी कल्पना करके जीवनोपयोगी कर्मोंका रहस्य समझाया गया है। भाव यह है कि ये दिन और रात मिलकर जगत्पति परमेश्वरका पूर्णरूप हैं। उसका यह दिन तो मानो प्राण अर्थात् सबको जीवन देनेवाला प्रकाशमय विशुद्ध स्वरूप है और रात्रि ही भोगरूप रयि है। अतः जो मनुष्य दिनमें स्त्री-प्रसङ्ग करते हैं अर्थात् परमात्माके विशुद्ध स्वरूपको प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रकाशमय मार्गमें चलना प्रारम्भ करके भी स्त्री-प्रसङ्ग आदि विलासमें आसक्त हो जाते हैं, वे अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर इस अमूल्य जीवनको व्यर्थ खो देते हैं। उनसे भिन्न जो सांसारिक उन्नति चाहनेवाले हैं, वे यदि शास्त्रके नियमानुसार ऋतुकालमें रात्रिके समय नियमानुकूल स्त्री-प्रसङ्ग करते हैं तो वे शास्त्रकी आज्ञाका पालन करनेके कारण ब्रह्मचारीके तुल्य ही हैं। लौकिक दृष्टिसे यों कह सकते हैं कि इस मन्त्रमें गृहस्थोंको दिनमें स्त्री-प्रसङ्ग कदापि न करनेका और विहित रात्रियोंमें शास्त्रानुसार नियमित और संयमितरूपमें केवल सन्तानकी इच्छासे करनेका उपदेश दिया गया है। तभी वह ब्रह्मचर्यकी गणनामें आ सकता है*॥ १३॥

**अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति॥ १४॥**

**अन्नम् वै**=अन्न ही; **प्रजापतिः**=प्रजापति है; **ह ततः वै**=क्योंकि उसीसे; **तत् रेतः**=वह वीर्य (उत्पन्न होता है); **तस्मात्**=उस वीर्यसे; **इमाः प्रजाः**=ये सम्पूर्ण चराचर प्राणी; **प्रजायन्ते इति**=उत्पन्न होते हैं॥ १४॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें अन्नको प्रजापतिका स्वरूप बताकर अन्नकी महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि यह सब प्राणियोंका आहाररूप अन्न ही प्रजापति है, क्योंकि इसीसे वीर्य उत्पन्न होता है और वीर्यसे समस्त चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। इस कारण इस अन्नको भी प्रकारान्तरसे प्रजापति माना गया है॥ १४॥

**सम्बन्ध**—*अब पहले बतलाये हुए दो प्रकारके साधकोंको मिलनेवाले पृथक्-पृथक् फलका वर्णन करते हैं*—

**तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते। तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्॥ १५॥**

**तत् ये ह वै**=जो कोई भी निश्चयपूर्वक; **तत् प्रजापतिव्रतम्**=उस प्रजापति-व्रतका; **चरन्ति**=अनुष्ठान करते हैं; **ते मिथुनम्**=वे जोड़ेको; **उत्पादयन्ते**=उत्पन्न करते हैं; **येषाम् तपः**=जिनमें तप (और); **ब्रह्मचर्यम्**=ब्रह्मचर्य (है); **येषु सत्यम्**=जिनमें सत्य; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित है; **तेषाम् एव**=उन्हींको; **एषः ब्रह्मलोकः**=यह ब्रह्मलोक मिलता है॥ १५॥

**व्याख्या**—जो लोग सन्तानोत्पत्तिरूप प्रजापतिके व्रतका अनुष्ठान करते हैं अर्थात् स्वर्गादि लोकोंके भोगकी प्राप्तिके लिये शास्त्रविहित शुभ कर्मोंका आचरण करते हुए नियमानुसार स्त्री-प्रसङ्ग आदि भोगोंका उपभोग करते हैं, वे तो पुत्र और कन्यारूप जोड़ेको उत्पन्न करके प्रजाकी वृद्धि करते हैं। और जो उनसे भिन्न हैं, जिनमें ब्रह्मचर्य और तप भरा हुआ है, जिनका जीवन सत्यमय है तथा जो सत्यस्वरूप परमेश्वरको अपने हृदयमें नित्य स्थित देखते हैं, उन्हींको वह ब्रह्मलोक (परमपद, परमगति) मिलता है, दूसरोंको नहीं॥ १५॥

---

* रजोदर्शनके दिनसे लेकर सोलह दिनोंतक स्वाभाविक ऋतुकाल कहलाता है। इनमें पहली चार रात्रियाँ तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रियाँ सर्वथा वर्जित हैं। शेष दस रात्रियोंमें पर्व-(एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, ग्रहण, व्यतिपात, संक्रान्ति, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, रामनवमी आदि)-दिनोंको छोड़कर पत्नीकी रतिकामनासे जो पुरुष महीनेमें केवल दो रात्रि स्त्री-सहवास करता है, वह गृहस्थाश्रममें रहता हुआ ही ब्रह्मचारी माना जाता है। (मनुस्मृति ३। ४५—४७, ५०)

**तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति॥ १६॥**

**येषु न**=जिनमें न तो; **जिह्मम्**=कुटिलता (और); **अनृतम्**=झूठ है; **च न**=तथा न; **माया**=माया (कपट) ही है; **तेषाम्**=उन्हींको; **असौ**=वह; **विरजः**=विशुद्ध, विकाररहित; **ब्रह्मलोकः इति**=ब्रह्मलोक (मिलता है)॥ १६॥

**व्याख्या**—जिनमें कुटिलताका लेश भी नहीं है, जो स्वप्नमें भी मिथ्या-भाषण नहीं करते और असत्यमय आचरणसे सदा दूर रहते हैं, जिनमें राग-द्वेषादि विकारोंका सर्वथा अभाव है, जो सब प्रकारके छल-कपटसे शून्य हैं, उन्हींको वह विशुद्ध विकाररहित ब्रह्मलोक मिलता है। जो इनसे विपरीत लक्षणोंवाले हैं, उनको नहीं मिलता॥ १६॥

**॥ प्रथम प्रश्न समाप्त॥ १॥**

# द्वितीय प्रश्न

**अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ। भगवन्कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति॥ १॥**

**अथ ह एनम्**=इसके पश्चात् इन प्रसिद्ध (महात्मा पिप्पलाद) ऋषिसे; **वैदर्भिः भार्गवः**=विदर्भदेशीय भार्गवने; **पप्रच्छ**=पूछा; **भगवन्**=भगवन्!; **कति देवाः एव**=कुल कितने देवता; **प्रजाम् विधारयन्ते**=प्रजाको धारण करते हैं; **कतरे एतत्**=उनमेंसे कौन-कौन इसे; **प्रकाशयन्ते**=प्रकाशित करते हैं; **पुनः**=फिर (यह भी बतलाइये कि); **एषाम्**=इन सबमें; **कः**=कौन; **वरिष्ठः**=सर्वश्रेष्ठ है; **इति**=यही (मेरा प्रश्न है)॥ १॥

**व्याख्या**—इन भार्गव ऋषिने महर्षि पिप्पलादसे तीन बातें पूछी हैं—(१) प्रजाको यानी प्राणियोंके शरीरको धारण करनेवाले कुल कितने देवता हैं? (२) उनमेंसे कौन-कौन इसको प्रकाशित करनेवाले हैं? (३) इन सबमें अत्यन्त श्रेष्ठ कौन है?॥ १॥

**तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः॥ २॥**

**सः ह**=उन प्रसिद्ध महर्षि (पिप्पलाद)-ने; **तस्मै उवाच**=उन भार्गवसे कहा; **ह आकाशः वै**=निश्चय ही वह प्रसिद्ध आकाश; **एषः देवः**=यह देवता है (तथा); **वायुः**=वायु; **अग्निः**=अग्नि; **आपः**=जल; **पृथिवी**=पृथ्वी; **वाक्**=वाणी (कर्मेन्द्रियाँ); **चक्षुः च श्रोत्रम् मनः**=नेत्र और श्रोत्र (ज्ञानेन्द्रियाँ) तथा मन (अन्तःकरण) भी [देवता हैं]; **ते प्रकाश्य**=वे सब (अपनी-अपनी शक्ति) प्रकट करके; **अभिवदन्ति**=अभिमानपूर्वक कहने लगे; **वयम् एतत् बाणम्**=हमने इस शरीरको; **अवष्टभ्य**=आश्रय देकर; **विधारयामः**=धारण कर रखा है॥ २॥

**व्याख्या**—इस प्रकार भार्गवके पूछनेपर महर्षि पिप्पलाद उत्तर देते हैं। यहाँ दो प्रश्नोंका उत्तर एक ही साथ दे दिया गया है। वे कहते हैं कि सबका आधार तो वैसे आकाशरूप देवता ही है; परंतु उससे उत्पन्न होनेवाले वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये चारों महाभूत भी शरीरको धारण किये रहते हैं। यह स्थूलशरीर इन्हींसे बना है। इसलिये ये धारक देवता हैं। वाणी आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, नेत्र और कान आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं मन आदि अन्तःकरण—ये चौदह देवता इस शरीरके प्रकाशक हैं। ये देवता देहको धारण और प्रकाशित करते हैं, इसलिये ये प्रकाशक देवता कहलाते हैं। ये इस देहको प्रकाशित करके आपसमें झगड़ पड़े और अभिमानपूर्वक परस्पर कहने लगे कि 'हमने इस शरीरको आश्रय देकर धारण कर रखा है'॥ २॥

**तान्वरिष्ठः प्राण उवाच। मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः॥ ३॥**

**तान् वरिष्ठः प्राणः**=उनसे सर्वश्रेष्ठ प्राण; **उवाच**=बोला; **मोहम्**=(तुमलोग) मोहमें; **मा आपद्यथ**=न पड़ो; **अहम् एव**=मैं ही; **एतत् आत्मानम्**=अपने इस स्वरूपको; **पञ्चधा प्रविभज्य**=पाँच भागोंमें विभक्त करके; **एतत्**

**बाणम्**=इस शरीरको; **अवष्टभ्य**=आश्रय देकर; **विधारयामि**=धारण करता हूँ; **इति ते**=यह (सुनकर भी) वे; **अश्रद्दधानाः**=अविश्वासी ही; **बभूवुः**=बने रहे॥ ३॥

**व्याख्या**—इस प्रकार जब सम्पूर्ण महाभूत, इन्द्रियाँ और अन्तःकरणरूप देवता परस्पर विवाद करने लगे, तब सर्वश्रेष्ठ प्राणने उनसे कहा—'तुमलोग अज्ञानवश आपसमें विवाद मत करो; तुममेंसे किसीमें भी इस शरीरको धारण करने या सुरक्षित रखनेकी शक्ति नहीं है। इसे तो मैंने ही अपनेको (प्राण, अपान, समान, व्यान और उदानरूप) पाँच भागोंमें विभक्त करके आश्रय देते हुए धारण कर रखा है और मुझसे ही यह सुरक्षित है।' प्राणकी यह बात सुनकर भी उन देवताओंने उसपर विश्वास नहीं किया; वे अविश्वासी ही बने रहे॥ ३॥

**सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिꣳश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिꣳश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति॥ ४॥**

**सः**=(तब) वह प्राण; **अभिमानात्**=अभिमानपूर्वक; **ऊर्ध्वम् उत्क्रमते इव**=मानो (उस शरीरसे) ऊपरकी ओर बाहर निकलने लगा; **तस्मिन् उत्क्रामति**=उसके बाहर निकलनेपर; **अथ इतरे सर्वे एव**=उसीके साथ-ही-साथ अन्य सब भी; **उत्क्रामन्ते च**=शरीरसे बाहर निकलने लगे और; **तस्मिन् प्रतिष्ठमाने**=(शरीरमें लौटकर) उसके ठहर जानेपर; **सर्वे एव प्रातिष्ठन्ते**=और सब देवता भी ठहर गये; **तत् यथा**=तब जैसे (मधुके छत्तेसे); **मधुकरराजानम्**=मधुमक्खियोंके राजाके; **उत्क्रामन्तम्**=निकलनेपर उसीके साथ-साथ; **सर्वाः एव**=सारी ही; **मक्षिकाः**=मधुमक्खियाँ; **उत्क्रामन्ते**=बाहर निकल जाती हैं; **च तस्मिन्**=और उसके; **प्रतिष्ठमाने**=बैठ जानेपर; **सर्वाः एव**=सब-की-सब; **प्रातिष्ठन्ते**=बैठ जाती हैं; **एवम्**=ऐसी ही दशा (इन सबकी हुई); **वाक् चक्षुः श्रोत्रम् च मनः**=अतः वाणी, नेत्र, श्रोत्र और मन; **ते**=वे (सभी); **प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति**=(प्राणकी श्रेष्ठताका अनुभव करके) प्रसन्न होकर प्राणकी स्तुति करने लगे॥ ४॥

**व्याख्या**—तब उनको अपना प्रभाव दिखलाकर सावधान करनेके लिये वह सर्वश्रेष्ठ प्राण अभिमानमें ठेस लगनेसे मानो रूठकर इस शरीरसे बाहर निकलनेके लिये ऊपरकी ओर उठने लगा। फिर तो सब-के-सब देवता विवश होकर उसीके साथ बाहर निकलने लगे; कोई भी स्थिर नहीं रह सका। जब वह पुनः लौटकर अपने स्थानपर स्थित हो गया, तब अन्य सब भी स्थित हो गये। जैसे मधुमक्खियोंका राजा जब अपने स्थानसे उड़ता है, तब उसके साथ ही वहाँ बैठी हुई अन्य सब मधुमक्खियाँ भी उड़ जाती हैं और जब वह बैठ जाता है तो अन्य सब भी बैठ जाती हैं, ऐसी ही दशा इन सब वागादि देवताओंकी भी हुई। यह देखकर वाणी, चक्षु, श्रोत्र आदि सब इन्द्रियोंको और मन आदि अन्तःकरणकी वृत्तियोंको भी यह विश्वास हो गया कि हम सबमें प्राण ही श्रेष्ठ है; अतः वे सब प्रसन्नतापूर्वक निम्न प्रकारसे प्राणकी स्तुति करने लगे॥ ४॥

**सम्बन्ध**—*प्राणको ही परब्रह्म परमेश्वरका स्वरूप मानकर उपासना करनेके लिये उसका सर्वात्मरूपसे महत्त्व बतलाया जाता है—*

**एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः।**
**एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत्॥ ५॥**

**एषः अग्निः तपति**=यह प्राण अग्निरूपसे तपता है; **एषः सूर्यः**=यही सूर्य है; **एषः पर्जन्यः**=यही मेघ है; **(एषः) मघवान्**=यही इन्द्र है; **एषः वायुः**=यही वायु है (तथा); **एषः देवः**=यह प्राणरूप देव ही; **पृथिवी**=पृथ्वी (एवं); **रयिः**=रयि है; (तथा) **यत्**=जो कुछ; **सत्**=सत्; **च**=और; **असत्**=असत् है; **च**=तथा; [**यत्**=जो;] **अमृतम्**=अमृत कहा जाता है, वह भी है॥ ५॥

**व्याख्या**—वे वाणी आदि सब देवता स्तुति करते हुए बोले—'यह प्राण ही अग्निरूप धारण करके तपता है और यही सूर्य है। यही मेघ, इन्द्र और वायु है। यही देव पृथ्वी और रयि (भूतसमुदाय) है, तथा सत् और असत् एवं उससे भी श्रेष्ठ जो अमृतस्वरूप परमात्मा है, वह भी यह प्राण ही है'॥ ५॥

**अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।**
**ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च॥ ६॥**

**रथनाभौ**=रथके पहियेकी नाभिमें लगे हुए; **अराः इव**=अरोंकी भाँति; **ऋचः यजूंषि**=ऋग्वेदकी सम्पूर्ण ऋचाएँ, यजुर्वेदके मन्त्र (तथा); **सामानि**=सामवेदके मन्त्र; **यज्ञः च**=यज्ञ और; **ब्रह्म क्षत्रम्**=(यज्ञ करनेवाले) ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि अधिकारिवर्ग; **सर्वम्**=ये सब-के-सब; **प्राणे**=(इस) प्राणमें; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित हैं॥ ६॥

**व्याख्या**—जिस प्रकार रथके पहियेकी नाभिमें लगे हुए अरे नाभिके ही आश्रित रहते हैं, उसी प्रकार ऋग्वेदकी सब ऋचाएँ, यजुर्वेदके समस्त मन्त्र, सब-का-सब सामवेद, उनके द्वारा सिद्ध होनेवाले यज्ञादि शुभकर्म और यज्ञादि शुभकर्म करनेवाले ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि अधिकारिवर्ग—ये सब-के-सब प्राणके आधारपर ही टिके हुए हैं; सबका आश्रय प्राण ही है॥ ६॥

**सम्बन्ध**—*इस प्रकार प्राणका महत्त्व बतलाकर अब उसकी स्तुति की जाती है—*

**प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे। तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि॥ ७॥**

**प्राण**=हे प्राण!; [**त्वम् एव**=तू ही;] **प्रजापतिः**=प्रजापति है; **त्वम् एव**=तू ही; **गर्भे चरसि**=गर्भमें विचरता है; **प्रतिजायसे**=(और तू ही) माता-पिताके अनुरूप होकर जन्म लेता है; **तु**=निश्चय ही; **इमाः**=ये सब; **प्रजाः**=जीव; **तुभ्यम्**=तुझे; **बलिम् हरन्ति**=भेंट समर्पण करते हैं; **यः**=जो तू; **प्राणैः प्रतितिष्ठसि**=(अपानादि अन्य) प्राणोंके साथ-साथ स्थित हो रहा है॥ ७॥

**व्याख्या**—हे प्राण! तू ही प्रजापति (प्राणियोंका ईश्वर) है, तू ही गर्भमें विचरनेवाला और माता-पिताके अनुरूप संतानके रूपमें जन्म लेनेवाला है। ये सब जीव तुझे ही भेंट समर्पण करते हैं। तू ही अपानादि सब प्राणोंके सहित सबके शरीरमें स्थित हो रहा है॥ ७॥

**देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा।**
**ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि॥ ८॥**

(हे प्राण!) **देवानाम्**=(तू) देवताओंके लिये; **वह्नितमः**=उत्तम अग्नि है; **पितॄणाम्**=पितरोंके लिये; **प्रथमा स्वधा**=पहली स्वधा है; **अथर्वाङ्गिरसाम्**=अथर्वाङ्गिरस् आदि; **ऋषीणाम्**=ऋषियोंके द्वारा; **चरितम्**=आचरित; **सत्यम्**=सत्य; **असि**=है॥ ८॥

**व्याख्या**—हे प्राण! तू देवताओंके लिये हवि पहुँचानेवाला उत्तम अग्नि है। पितरोंके लिये पहली स्वधा है। अथर्वाङ्गिरस् आदि ऋषियोंके द्वारा आचरित (अनुभूत) सत्य भी तू ही है॥ ८॥

**इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।**
**त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः॥ ९॥**

**प्राण**=हे प्राण; **त्वम् तेजसा**=तू तेजसे (सम्पन्न); **इन्द्रः**=इन्द्र; **रुद्रः**=रुद्र (और); **परिरक्षिता**=रक्षा करनेवाला; **असि**=है; **त्वम्**=तू ही; **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्षमें; **चरसि**=विचरता है (और); **त्वम्**=तू ही; **ज्योतिषां पतिः**=समस्त ज्योतिर्गणोंका स्वामी; **सूर्यः**=सूर्य है॥ ९॥

**व्याख्या**—हे प्राण! तू सब प्रकारके तेज (शक्तियों)-से सम्पन्न, तीनों लोकोंका स्वामी इन्द्र है। तू ही प्रलयकालमें सबका संहार करनेवाला रुद्र है और तू ही सबकी भलीभाँति यथायोग्य रक्षा करनेवाला है। तू ही अन्तरिक्षमें (पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें) विचरनेवाला वायु है तथा तू ही अग्नि, चन्द्र, तारे आदि समस्त ज्योतिर्गणोंका स्वामी सूर्य है॥ ९॥

**यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः।**
**आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति॥ १०॥**

**प्राण**=हे प्राण!; **यदा त्वम्**=जब तू; **अभिवर्षसि**=भलीभाँति वर्षा करता है; **अथ**=उस समय; **ते इमाः प्रजाः**=तेरी यह सम्पूर्ण प्रजा; **कामाय**=यथेष्ट; **अन्नम्**=अन्न; **भविष्यति**=उत्पन्न होगा; **इति**=यह समझकर; **आनन्दरूपाः**=आनन्दमय; **तिष्ठन्ति**=हो जाती है॥ १०॥

**व्याख्या**—हे प्राण! जब तू मेघरूप होकर पृथ्वी-लोकमें सब ओर वर्षा करता है, तब तेरी यह सम्पूर्ण प्रजा 'हमलोगोंके जीवननिर्वाहके लिये यथेष्ट अन्न उत्पन्न होगा'—ऐसी आशा करती हुई आनन्दमें मग्न हो जाती है॥ १०॥

**व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः।**
**वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः॥ ११॥**

**प्राण**=हे प्राण!; **त्वम्**=तू; **व्रात्यः**=संस्काररहित (होते हुए भी); **एकर्षिः**=एकमात्र सर्वश्रेष्ठ ऋषि है (तथा); **वयम्**=हमलोग (तेरे लिये); **आद्यस्य**=भोजनको; **दातारः**=देनेवाले हैं (और तू); **अत्ता**=भोक्ता (खानेवाला) है; **विश्वस्य**=समस्त जगत्का; **सत्पतिः**=(तू ही) श्रेष्ठ स्वामी है; **मातरिश्व**=हे आकाशमें विचरनेवाले वायुदेव!; **त्वम्**=तू; **नः**=हमारा; **पिता**=पिता है॥ ११॥

**व्याख्या**—हे प्राण! तू संस्काररहित होकर भी एकमात्र सर्वश्रेष्ठ ऋषि है। तात्पर्य यह कि तू स्वभावसे ही शुद्ध है, अतः तुझे संस्कारद्वारा शुद्धिकी आवश्यकता नहीं है; प्रत्युत तू ही सबको पवित्र करनेवाला एकमात्र सर्वश्रेष्ठ ऋषि है। हमलोग (सब इन्द्रियाँ और मन आदि) तेरे लिये नाना प्रकारकी भोजन-सामग्री अर्पण करनेवाले हैं और तू उसे खानेवाला है। तू ही समस्त विश्वका उत्तम स्वामी है। हे आकाशचारी समष्टिवायुस्वरूप प्राण! तू हमारा पिता है; क्योंकि तुझसे ही हम सबकी उत्पत्ति हुई है॥ ११॥

**या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि।**
**या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः॥ १२॥**

(हे प्राण!) **या ते तनूः**=जो तेरा स्वरूप; **वाचि**=वाणीमें; **प्रतिष्ठिता च**=स्थित है, तथा; **या श्रोत्रे**=जो श्रोत्रमें; **या चक्षुषि च**=जो चक्षुमें और; **या मनसि**=जो मनमें; **सन्तता**=व्याप्त है; **ताम्**=उसको; **शिवाम्**=कल्याणमय; **कुरु**=बना ले; **मा उत्क्रमीः**=(तू) उत्क्रमण न कर॥ १२॥

**व्याख्या**—हे प्राण! जो तेरा स्वरूप वाणी, श्रोत्र, चक्षु आदि समस्त इन्द्रियोंमें और मन आदि अन्तःकरणकी वृत्तियोंमें व्याप्त है, उसे तू कल्याणमय बना ले अर्थात् तुझमें जो हमें सावधान करनेके लिये आवेश आया है, उसे शान्त कर ले और तू शरीरसे उठकर बाहर न जा। यह हमलोगोंकी प्रार्थना है॥ १२॥

**प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।**
**मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति॥ १३॥**

**इदम्**=यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला जगत् (और); **यत् त्रिदिवे**=जो कुछ स्वर्गलोकमें; **प्रतिष्ठितम्**=स्थित है; **सर्वम्**=वह सब-का-सब; **प्राणस्य**=प्राणके; **वशे**=अधीन है (हे प्राण!); **माता पुत्रान् इव**=जैसे माता अपने पुत्रोंकी रक्षा करती है, उसी प्रकार (तू हमारी); **रक्षस्व**=रक्षा कर; **च**=तथा; **नः श्रीः च**=हमें कान्ति और; **प्रज्ञाम्**=बुद्धि; **विधेहि**=प्रदान कर; **इति**=इस प्रकार यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुआ॥ १३॥

**व्याख्या**—प्रत्यक्ष दीखनेवाले इस लोकमें जितने भी पदार्थ हैं और जो कुछ स्वर्गमें स्थित हैं, वे सब-के-सब इस प्राणके ही अधीन हैं। यह सोचकर वे इन्द्रियादि देवगण अन्तमें प्राणसे प्रार्थना करते हैं—'हे प्राण! जिस प्रकार माता अपने पुत्रोंकी रक्षा करती है, उसी प्रकार तू हमारी रक्षा कर तथा तू हमलोगोंको श्री अर्थात् कार्य करनेकी शक्ति और प्रज्ञा (ज्ञान) प्रदान कर।'

इस प्रकार इस प्रकरणमें भार्गव ऋषिद्वारा पूछे हुए तीन प्रश्नोंका उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पलादने यह बात समझायी कि समस्त प्राणियोंके शरीरोंको अवकाश देकर बाहर और भीतरसे धारण करनेवाला आकाश-

तत्त्व है। साथ ही इस शरीरके अवयवोंकी पूर्ति करनेवाले वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये चार तत्त्व हैं। दस इन्द्रियाँ और अन्तःकरण—ये इसको प्रकाश देकर क्रियाशील बनानेवाले हैं। इन सबसे श्रेष्ठ प्राण है। अतएव प्राण ही वास्तवमें इस शरीरको धारण करनेवाला है, प्राणके बिना शरीरको धारण करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। अन्य सब इन्द्रिय आदिमें इसीकी शक्ति अनुस्यूत है, इसीकी शक्ति पाकर वे शरीरको धारण करते हैं। इसी प्रकार प्राणकी श्रेष्ठताका वर्णन छान्दोग्य-उपनिषद्के पाँचवें अध्यायके आरम्भमें और बृहदारण्यक-उपनिषद्के छठे अध्यायके आरम्भमें आया है। इस प्रकरणमें प्राणकी स्तुतिका प्रसङ्ग अधिक है॥ १३॥

**॥ द्वितीय प्रश्न समाप्त ॥ २ ॥**



# तृतीय प्रश्न

**अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ भगवन्कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति॥ १ ॥**

**अथ ह एनम्**=उसके बाद इन प्रसिद्ध महात्मा (पिप्पलाद)-से; **कौसल्यः आश्वलायनः**=कोसलदेशीय आश्वलायनने; **च**=भी; **पप्रच्छ**=पूछा; **भगवन्**=भगवन्; **एषः प्राणः**=यह प्राणः; **कुतः जायते**=किससे उत्पन्न होता है; **अस्मिन् शरीरे**=इस शरीरमें; **कथम् आयाति**=कैसे आता है; **वा आत्मानम्**=तथा अपनेको; **प्रविभज्य**=विभाजित करके; **कथम् प्रातिष्ठते**=किस प्रकार स्थित होता है; **केन उत्क्रमते**=किस ढंगसे उत्क्रमण करता—शरीरसे बाहर निकलता है; **कथम् बाह्यम्**=किस प्रकार बाह्य जगत्को; **अभिधत्ते**=भलीभाँति धारण करता है (और); **कथम् अध्यात्मम्**=किस प्रकार मन और इन्द्रिय आदि शरीरके भीतर रहनेवाले जगत्को; **इति**=यही (मेरा प्रश्न है)॥ १॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें आश्वलायन मुनिने महर्षि पिप्पलादसे कुल छः बातें पूछी हैं—(१) जिस प्राणकी महिमाका आपने वर्णन किया, वह प्राण किससे उत्पन्न होता है?, (२) वह इस मनुष्य-शरीरमें कैसे प्रवेश करता है?, (३) अपनेको विभाजित करके किस प्रकार शरीरमें स्थित रहता है?, (४) एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जाते समय पहले शरीरसे किस प्रकार निकलता है?, (५) इस बाह्य (पाञ्चभौतिक) जगत्को किस प्रकार धारण करता है? तथा (६) मन और इन्द्रिय आदि आध्यात्मिक (आन्तरिक) जगत्को किस प्रकार धारण करता है? यहाँ प्राणके विषयमें वे ही बातें पूछी गयी हैं, जिनका वर्णन पहले उत्तरमें नहीं आया है और जो पहले प्रश्नके उत्तरको सुनकर ही स्फुरित हुई हैं; इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रश्नोत्तरके समय सुकेशादि छहों ऋषि वहाँ साथ-साथ बैठे सुन रहे थे॥ १॥

**तस्मै स होवाचातिप्रश्नान्पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि॥ २॥**

**तस्मै सः ह उवाच**=उनसे उन प्रसिद्ध महर्षिने कहा; **अतिप्रश्नान् पृच्छसि**=तू बड़े कठिन प्रश्न पूछ रहा है (किंतु); **ब्रह्मिष्ठः असि इति**=वेदोंको अच्छी तरह जाननेवाला है; **तस्मात्**=अतः; **अहम्**=मैं; **ते**=तेरे; **ब्रवीमि**=प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ॥ २॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें महर्षि पिप्पलादने आश्वलायन मुनिके प्रश्नोंको कठिन बतलाकर उनकी बुद्धिमत्ता और तर्कशीलताकी प्रशंसा की है और साथ ही यह भाव भी दिखलाया है कि 'तू जिस ढंगसे पूछ रहा है, उसे देखते हुए तो मुझे तेरे प्रश्नोंका उत्तर नहीं देना चाहिये। परंतु मैं जानता हूँ कि तू तर्कबुद्धिसे नहीं पूछ रहा है, तू श्रद्धालु है, वेदोंमें निष्णात है; अतः मैं तेरे प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ'॥ २॥

**आत्मन एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे॥ ३॥**

**एषः प्राणः**=यह प्राण; **आत्मनः**=परमात्मासे; **जायते**=उत्पन्न होता है; **यथा**=जिस प्रकार; **एषा छाया**=यह छाया; **पुरुषे**=पुरुषके होनेपर (ही होती है); [**तथा**=उसी प्रकार;] **एतत्**=यह (प्राण); **एतस्मिन्**=इस

(परमात्मा)-के ही; **आततम्**=आश्रित है (और); **अस्मिन् शरीरे**=इस शरीरमें; **मनोकृतेन**=मनके किये हुए (संकल्प)-से; **आयाति**=आता है॥ ३॥

**व्याख्या**—यहाँ महर्षि पिप्पलादने क्रमसे आश्वलायन ऋषिके दो प्रश्नोंका उत्तर दिया है। पहले प्रश्नका उत्तर तो यह है कि जिसका प्रकरण चल रहा है, वह सर्वश्रेष्ठ प्राण परमात्मासे उत्पन्न हुआ है। वह परब्रह्म परमेश्वर ही इसका उपादानकारण है और वही इसकी रचना करनेवाला है; अतः इसकी स्थिति उस सर्वात्मा महेश्वरके अधीन—उसीके आश्रित है—ठीक जिस प्रकार किसी मनुष्यकी छाया उसके अधीन रहती है। दूसरे प्रश्नका उत्तर यह है कि यह मनद्वारा किये हुए संकल्पसे किसी शरीरमें प्रवेश करता है। भाव यह कि मरते समय प्राणीके मनमें उसके कर्मानुसार जैसा संकल्प होता है, उसे वैसा ही शरीर मिलता है; अतः प्राणोंका शरीरमें प्रवेश मनके संकल्पसे ही होता है॥ ३॥

**सम्बन्ध**—*अब आश्वलायनके तीसरे प्रश्नका उत्तर विस्तारपूर्वक आरम्भ किया जाता है—*

**यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते॥ ४॥**

**यथा**=जिस प्रकार; **सम्राट् एव**=चक्रवर्ती महाराज स्वयं ही; **एतान् ग्रामान् एतान् ग्रामान् अधितिष्ठस्व**=इन गाँवोंमें तुम रहो, इन गाँवोंमें तुम रहो; **इति**=इस प्रकार; **अधिकृतान्**=अधिकारियोंको; **विनियुङ्क्ते**=अलग-अलग नियुक्त करता है; **एवम् एव**=इसी प्रकार; **एषः प्राणः**=यह मुख्य प्राण; **इतरान्**=दूसरे; **प्राणान्**=प्राणोंको; **पृथक् पृथक् एव**=पृथक्-पृथक् ही; **संनिधत्ते**=स्थापित करता है॥ ४॥

**व्याख्या**—यहाँ महर्षि उदाहरणद्वारा तीसरे प्रश्नका समाधान करते हुए कहते हैं—'जिस प्रकार भूमण्डलका चक्रवर्ती महाराज भिन्न-भिन्न ग्राम, मण्डल और जनपद आदिमें पृथक्-पृथक् अधिकारियोंकी नियुक्ति करता है और उनका कार्य बाँट देता है, उसी प्रकार यह सर्वश्रेष्ठ प्राण भी अपने अङ्गस्वरूप अपान, व्यान आदि दूसरे प्राणोंको शरीरके पृथक्-पृथक् स्थानोंमें पृथक्-पृथक् कार्यके लिये नियुक्त कर देता है'॥ ४॥

**सम्बन्ध**—*अब मुख्य प्राण, अपान और समान—इन तीनोंका वासस्थान और कार्य बतलाया जाता है—*

**पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः। एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति॥ ५॥**

**प्राणः**=(वह) प्राण; **पायूपस्थे**=गुदा और उपस्थमें; **अपानम् ( नियुङ्क्ते )**=अपानको रखता है; **स्वयम्**=स्वयं; **मुखनासिकाभ्याम्**=मुख और नासिकाद्वारा विचरता हुआ); **चक्षुःश्रोत्रे**=नेत्र और श्रोत्रमें; **प्रातिष्ठते**=स्थित रहता है; **तु मध्ये**=और शरीरके मध्यभागमें; **समानः**=समान (रहता है); **एषः हि**=यह (समान वायु) ही; **एतत् हुतम् अन्नम्**=इस प्राणाग्निमें हवन किये हुए अन्नको; **समम् नयति**=समस्त शरीरमें यथायोग्य समभावसे पहुँचाता है; **तस्मात्**=उससे; **एताः सप्त**=ये सात; **अर्चिषः**=ज्वालाएँ (विषयोंको प्रकाशित करनेवाले ऊपरके द्वार); **भवन्ति**=उत्पन्न होती हैं॥ ५॥

**व्याख्या**—यह स्वयं तो मुख और नासिकाद्वारा विचरता हुआ नेत्र और श्रोत्रमें स्थित रहता है तथा गुदा और उपस्थमें अपानको स्थापित करता है। उसका काम मल-मूत्रको शरीरके बाहर निकाल देना है; रज-वीर्य और गर्भको बाहर करना भी इसीका काम है। शरीरके मध्य भाग—नाभिमें समान रखता है। यह समान वायु ही प्राणरूप अग्निमें हवन किये हुए—उदरमें डाले हुए अन्नको अर्थात् उसके सारको सम्पूर्ण शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें यथायोग्य समभावसे पहुँचाता है। उस अन्नके सारभूत रससे ही इस शरीरमें ये सात ज्वालाएँ अर्थात् समस्त विषयोंको प्रकाशित करनेवाले दो नेत्र, दो कान, दो नासिकाएँ और एक मुख (रसना)—ये सात द्वार उत्पन्न होते हैं; उस रससे पुष्ट होकर ही ये अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं॥ ५॥

**सम्बन्ध**—*अब व्यानकी गतिका वर्णन किया जाता है—*

**हृदि ह्येष आत्मा अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति॥ ६॥**

**एषः हि**=यह प्रसिद्ध; **आत्मा**=जीवात्मा; **हृदि**=हृदयदेशमें रहता है; **अत्र**=इस (हृदय)-में; **एतत्**=यह; **नाडीनाम् एकशतम्**=मूलरूपसे एक सौ नाडियोंका समुदाय है; **तासाम्**=उनमेंसे; **एकैकस्याम्**=एक-एक नाडीमें; **शतम् शतम्**=एक-एक सौ (शाखाएँ) हैं (प्रत्येक शाखा-नाडीकी); **द्वासप्ततिः द्वासप्ततिः**=बहत्तर-बहत्तर; **प्रतिशाखानाडीसहस्त्राणि**=हजार प्रतिशाखा-नाडियाँ; **भवन्ति**=होती हैं; **आसु**=इनमें; **व्यानः**=व्यानवायु; **चरति**=विचरण करता है॥ ६॥

**व्याख्या**—इस शरीरमें जो हृदयप्रदेश है, जो जीवात्माका निवासस्थान है, उसमें एक सौ मूलभूत नाडियाँ हैं; उनमेंसे प्रत्येक नाडीकी एक-एक सौ शाखा-नाडियाँ हैं और प्रत्येक शाखा-नाडीकी बहत्तर-बहत्तर हजार प्रतिशाखा-नाडियाँ हैं। इस प्रकार इस शरीरमें कुल बहत्तर करोड़ नाडियाँ हैं; इन सबमें व्यानवायु विचरण करता है॥ ६॥

**सम्बन्ध**—*अब उदानका स्थान और कार्य बतलाते हैं, साथ ही आश्वलायनके चौथे प्रश्नका उत्तर भी देते हैं—*

**अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्॥ ७॥**

**अथ**=तथा; **एकया**=जो एक नाडी और है, उसके द्वारा; **उदानः ऊर्ध्वः**=उदान वायु ऊपरकी ओर; [**चरति**=विचरता है;] (**सः**) **पुण्येन**=वह पुण्यकर्मोंके द्वारा; [**मनुष्यम्**=मनुष्यको;] **पुण्यम् लोकम्**=पुण्यलोकोंमें; **नयति**=ले जाता है; **पापेन**=पापकर्मोंके कारण (उसे); **पापम् नयति**=पापयोनियोंमें ले जाता है (तथा); **उभाभ्याम् एव**=पाप और पुण्य दोनों प्रकारके कर्मोंद्वारा (जीवको); **मनुष्यलोकम्**=मनुष्य-शरीरमें; [**नयति**=ले जाता है]॥ ७॥

**व्याख्या**—इन ऊपर बतलायी हुई बहत्तर करोड़ नाडियोंसे भिन्न एक नाडी और है, जिसको 'सुषुम्णा' कहते हैं, जो हृदयसे निकलकर ऊपर मस्तकमें गयी है। उसके द्वारा उदान वायु शरीरमें ऊपरकी ओर विचरण करता है। (इस प्रकार आश्वलायनके तीसरे प्रश्नका समाधान करके अब महर्षि उसके चौथे प्रश्नका उत्तर संक्षेपमें देते हैं—) जो मनुष्य पुण्यशील होता है, जिसके शुभकर्मोंके भोग उदय हो जाते हैं, उसे यह उदान वायु ही अन्य सब प्राण और इन्द्रियोंके सहित वर्तमान शरीरसे निकालकर पुण्यलोकोंमें अर्थात् स्वर्गादि उच्च लोकोंमें ले जाता है। पापकर्मोंसे युक्त मनुष्यको शूकर-कूकर आदि पाप-योनियोंमें और रौरवादि नरकोंमें ले जाता है तथा जो पाप और पुण्य—दोनों प्रकारके कर्मोंका मिश्रित फल भोगनेके लिये अभिमुख हुए रहते हैं, उनको मनुष्य-शरीरमें ले जाता है*॥ ७॥

**सम्बन्ध**—*अब दो मन्त्रोंमें आश्वलायनके पाँचवें और छठे प्रश्नका उत्तर देते हुए जीवात्माके प्राण और इन्द्रियोंसहित एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जानेकी बात भी स्पष्ट करते हैं—*

**आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः॥ ८॥**

**ह**=यह निश्चय है कि; **आदित्यः वै**=सूर्य ही; **बाह्यः प्राणः**=बाह्य प्राण है; **एषः हि**=यही; **एनम् चाक्षुषम्**=इस नेत्रसम्बन्धी; **प्राणम्**=प्राणपर; **अनुगृह्णानः**=अनुग्रह करता हुआ; **उदयति**=उदित होता है; **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **या देवता**=जो (अपान वायुकी शक्तिरूप) देवता है; **सा एषा**=वही यह; **पुरुषस्य**=मनुष्यके; **अपानम्**=अपान वायुको; **अवष्टभ्य**=स्थिर किये; [**वर्तते**=रहता है;] **अन्तरा**=पृथ्वी और स्वर्गके बीच; **यत् आकाशः**=जो आकाश (अन्तरिक्षलोक) है; **सः समानः**=वह समान है; **वायुः व्यानः**=वायु ही व्यान है॥ ८॥

**व्याख्या**—यह निश्चयपूर्वक समझना चाहिये कि सूर्य ही सबका बाह्य प्राण है। यह मुख्य प्राण सूर्यरूपसे उदय होकर इस शरीरके बाह्य अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको पुष्ट करता है और नेत्र-इन्द्रियरूप आध्यात्मिक शरीरपर अनुग्रह करता है—उसे देखनेकी शक्ति अर्थात् प्रकाश देता है। पृथ्वीमें जो देवता अर्थात् अपान वायुकी शक्ति

* एक शरीरसे निकलकर जब मुख्य प्राण उदानको साथ लेकर उसके द्वारा दूसरे शरीरमें जाता है, तब अपने अङ्गभूत समान आदि प्राणोंको तथा इन्द्रिय और मनको तो साथ ले ही जाता है, इन सबका स्वामी जीवात्मा भी उसीके साथ जाता है—यह बात यहाँ कहनी थी; इसीलिये पूर्वमन्त्रमें जीवात्माका स्थान हृदय बतलाया गया है।

है, वह इस मनुष्यके भीतर रहनेवाले अपान वायुको आश्रय देती है—टिकाये रखती है। यह अपान वायुकी शक्ति गुदा और उपस्थ इन्द्रियोंकी सहायक है तथा इनके बाहरी स्थूल आकारको धारण करती है। पृथ्वी और स्वर्गलोकके बीचका जो आकाश है, वही समान वायुका बाह्य स्वरूप है। वह इस शरीरके बाहरी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको अवकाश देकर इसकी रक्षा करता है और शरीरके भीतर रहनेवाले समान वायुको विचरनेके लिये शरीरमें अवकाश देता है; इसीकी सहायतासे श्रोत्र-इन्द्रिय शब्द सुन सकती है। आकाशमें विचरनेवाला प्रत्यक्ष वायु ही व्यानका बाह्य स्वरूप है, यह इस शरीरके बाहरी अङ्ग-प्रत्यङ्गको चेष्टाशील करता है और शान्ति प्रदान करता है; भीतरी व्यान वायुको नाडियोंमें संचारित करने तथा त्वचा-इन्द्रियको स्पर्शका ज्ञान करानेमें भी यह सहायक है॥ ८॥

**तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः॥ ९॥**

**ह तेजः वै**=प्रसिद्ध तेज (गरमी) ही; **उदानः**=उदान है; **तस्मात्**=इसीलिये; **उपशान्ततेजाः**=जिसके शरीरका तेज शान्त हो जाता है, वह (जीवात्मा); **मनसि**=मनमें; **सम्पद्यमानैः**=विलीन हुई; **इन्द्रियैः**=इन्द्रियोंके साथ; **पुनर्भवम्**=पुनर्जन्मको (प्राप्त होता है)॥ ९॥

**व्याख्या**—सूर्य और अग्निका जो बाहरी तेज अर्थात् उष्णत्व है, वही उदानका बाह्य स्वरूप है। वह शरीरके बाहरी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको ठंडा नहीं होने देता और शरीरके भीतरकी ऊष्माको भी स्थिर रखता है। जिसके शरीरसे उदान वायु निकल जाता है, उसका शरीर गरम नहीं रहता। अतः शरीरकी गरमी शान्त हो जाते ही उसमें रहनेवाला जीवात्मा मनमें विलीन हुई इन्द्रियोंको साथ लेकर उदान वायुके साथ-साथ दूसरे शरीरमें चला जाता है॥ ९॥

**सम्बन्ध**—*अब आश्वलायनके चौथे प्रश्नमें आयी हुई एक शरीरसे निकलकर दूसरे शरीरमें या लोकोंमें प्रवेश करनेकी बातका पुनः स्पष्टीकरण किया जाता है—*

**यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति॥ १०॥**

**एषः**=यह (जीवात्मा); **यच्चित्तः**=जिस सङ्कल्पवाला होता है; **तेन**=उस सङ्कल्पके साथ; **प्राणम्**=मुख्य प्राणमें; **आयाति**=स्थित हो जाता है; **प्राणः**=मुख्य प्राण; **तेजसा युक्तः**=तेज (उदान)-से युक्त हो; **आत्मना सह**=मन, इन्द्रियोंसे युक्त (जीवात्माको); **यथासंकल्पितम्**=उसके संकल्पानुसार; **लोकम्**=भिन्न-भिन्न लोक अथवा योनिको; **नयति**=ले जाता है॥ १०॥

**व्याख्या**—मरते समय इस आत्माका जैसा सङ्कल्प होता है, इसका मन अन्तिम क्षणमें जिस भावका चिन्तन करता है (गीता ८।६), उस सङ्कल्पके सहित मन, इन्द्रियोंको साथ लिये हुए यह मुख्य प्राणमें स्थित हो जाता है। वह मुख्य प्राण उदान वायुसे मिलकर मन और इन्द्रियोंके सहित जीवात्माको उस अन्तिम संकल्पके अनुसार यथायोग्य भिन्न-भिन्न लोक अथवा योनिमें ले जाता है। अतः मनुष्यको उचित है कि अपने मनमें निरन्तर एक भगवान्‌का ही चिन्तन रखे, दूसरा सङ्कल्प न आने दे। क्योंकि जीवन अल्प और अनित्य है; न जाने कब अचानक इस शरीरका अन्त हो जाय। यदि उस समय भगवान्‌का चिन्तन न होकर कोई दूसरा सङ्कल्प आ गया तो सदाकी भाँति पुनः चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा॥ १०॥

**सम्बन्ध**—*अब प्राणविषयक ज्ञानका सांसारिक और पारलौकिक फल बतलाते हैं—*

**य एवं विद्वान्प्राणं वेद न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः॥ ११॥**

**यः विद्वान्**=जो कोई विद्वान्; **एवम् प्राणम्**=इस प्रकार प्राण (के रहस्य)-को; **वेद**=जानता है; **अस्य**=उसकी; **प्रजा**=सन्तानपरम्परा; **न ह हीयते**=कदापि नष्ट नहीं होती; **अमृतः**=(वह) अमर; **भवति**=हो जाता है; **तत् एषः**=इस विषयका यह (अगला); **श्लोकः**=श्लोक (है)॥ ११॥

**व्याख्या**—जो कोई विद्वान् इस प्रकार इस प्राणके रहस्यको समझ लेता है, प्राणके महत्त्वको समझकर हर प्रकारसे उसे सुरक्षित रखता है, उसकी अवहेलना नहीं करता, उसकी सन्तानपरम्परा कभी नष्ट नहीं होती; क्योंकि उसका वीर्य अमोघ और अद्भुत शक्तिसम्पन्न हो जाता है और वह यदि उसके आध्यात्मिक रहस्यको

समझकर अपने जीवनको सार्थक बना लेता है, एक क्षण भी भगवान्‌के चिन्तनसे शून्य नहीं रहने देता तो सदाके लिये अमर हो जाता है अर्थात् जन्म-मरणरूप संसारसे मुक्त हो जाता है। इस विषयपर निम्नलिखित ऋचा है॥ ११॥

**उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा।**
**अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति॥ १२॥**

**प्राणस्य**=प्राणकी; **उत्पत्तिम्**=उत्पत्ति; **आयतिम्**=आगम; **स्थानम्**=स्थान; **विभुत्वम् एव**=और व्यापकताको भी; **च**=तथा; **( बाह्यम् ) एव अध्यात्मम् पञ्चधा च**=बाह्य एवं आध्यात्मिक पाँच भेदोंको भी; **विज्ञाय**=भलीभाँति जानकर; **अमृतम् अश्नुते**=(मनुष्य) अमृतका अनुभव करता है; **विज्ञाय अमृतम् अश्नुते इति**=जानकर अमृतका अनुभव करता है (यह पुनरुक्ति प्रश्नकी समाप्ति सूचित करनेके लिये है)॥ १२॥

**व्याख्या**—उपर्युक्त विवेचनके अनुसार जो मनुष्य प्राणकी उत्पत्तिको अर्थात् यह जिससे और जिस प्रकार उत्पन्न होता है—इस रहस्यको जानता है, शरीरमें उसके प्रवेश करनेकी प्रक्रियाका तथा इसकी व्यापकताका ज्ञान रखता है तथा जो प्राणकी स्थितिको अर्थात् बाहर और भीतर—कहाँ-कहाँ वह रहता है, इस रहस्यको तथा इसके बाहरी और भीतरी अर्थात् आधिभौतिक और आध्यात्मिक पाँचों भेदोंके रहस्यको भलीभाँति समझ लेता है, वह अमृतस्वरूप परमानन्दमय परब्रह्म परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है तथा उस आनन्दमयके संयोग-सुखका निरन्तर अनुभव करता है॥ १२॥

**॥ तृतीय प्रश्न समाप्त॥ ३॥**

# चतुर्थ प्रश्न

**अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति॥ १॥**

**अथ**=तदनन्तर; **ह एनम्**=इन प्रसिद्ध महात्मा (पिप्पलाद मुनि)-से; **गार्ग्यः**=गर्ग गोत्रमें उत्पन्न; **सौर्यायणी पप्रच्छ**=सौर्यायणी ऋषिने पूछा; **भगवन्**=भगवन्!; **एतस्मिन् पुरुषे**=इस मनुष्य-शरीरमें; **कानि स्वपन्ति**=कौन-कौन सोते हैं; **अस्मिन् कानि**=इसमें कौन-कौन; **जाग्रति**=जागते रहते हैं; **एषः कतरः देवः**=यह कौन देवता; **स्वप्नान् पश्यति**=स्वप्नोंको देखता है; **एतत् सुखम्**=यह सुख; **कस्य भवति**=किसको होता है; **सर्वे**=(और) ये सब-के-सब; **कस्मिन्**=किसमें; **नु**=निश्चितरूपसे; **सम्प्रतिष्ठिताः**=सम्पूर्णतया स्थित; **भवन्ति इति**=रहते हैं, यह (मेरा प्रश्न है)॥ १॥

**व्याख्या**—यहाँ गार्ग्य मुनिने महात्मा पिप्पलादसे पाँच बातें पूछी हैं—(१) गाढ़ निद्राके समय इस मनुष्य-शरीरमें रहनेवाले पूर्वोक्त देवताओंमेंसे कौन-कौन सोते हैं? (२) कौन-कौन जागते रहते हैं? (३) स्वप्न-अवस्थामें इनमेंसे कौन देवता स्वप्नकी घटनाओंको देखता रहता है? (४) निद्रा-अवस्थामें सुखका अनुभव किसको होता है? और (५) ये सब-के-सब देवता सर्वभावसे किसमें स्थित हैं अर्थात् किसके आश्रित हैं? इस प्रकार इस प्रश्नमें गार्ग्य मुनिने जीवात्मा और परमात्माका पूरा-पूरा तत्त्व पूछ लिया॥ १॥

**तस्मै स होवाच यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति। ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति। तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते॥ २॥**

**तस्मै सः ह उवाच**=उससे उन सुप्रसिद्ध महर्षिने कहा; **गार्ग्य यथा**=हे गार्ग्य!; जिस प्रकार; **अस्तम् गच्छतः**=अस्त होते हुए; **अर्कस्य मरीचयः**=सूर्यकी किरणें; **एतस्मिन् तेजोमण्डले**=इस तेजोमण्डलमें; **सर्वाः एकीभवन्ति**=सब-की-सब एक हो जाती हैं (फिर); **उदयतः ताः**=उदय होनेपर वे (सब); **पुनः पुनः**=पुनः-

पुनः; **प्रचरन्ति**=सब ओर फैलती रहती हैं; **ह एवम् वै**=ठीक ऐसे ही (निद्राके समय); **तत् सर्वम्**=वे सब इन्द्रियाँ (भी); **परे देवे मनसि**=परम देव मनमें; **एकी भवति**=एक हो जाती हैं; **तेन तर्हि एषः पुरुषः**=इस कारण उस समय यह जीवात्मा; **न शृणोति**=न (तो) सुनता है; **न पश्यति**=न देखता है; **न जिघ्रति**=न सूँघता है; **न रसयते**=न स्वाद लेता है; **न स्पृशते**=न स्पर्श करता है; **न अभिवदते**=न बोलता है; **न आदत्ते न आनन्दयते**=न ग्रहण करता है, न मैथुनका आनन्द भोगता है; **न विसृजते न इयायते**=न मल-मूत्रका त्याग करता है और न चलता ही है; **स्वपिति इति आचक्षते**=उस समय 'वह सो रहा है' यों (लोग) कहते हैं॥ २॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें महात्मा पिप्पलाद ऋषिने गार्ग्यके पहले प्रश्नका इस प्रकार उत्तर दिया है—'गार्ग्य! जब सूर्य अस्त होता है, उस समय उसकी सब ओर फैली हुई सम्पूर्ण किरणें जिस प्रकार उस तेजःपुञ्जमें मिलकर एक हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार गाढ़ निद्राके समय तुम्हारे पूछे हुए सब देवता अर्थात् सब-की-सब इन्द्रियाँ उन सबसे श्रेष्ठ जो मनरूप देव है, उसमें विलीन होकर तद्रूप हो जाती हैं। इसलिये उस समय यह जीवात्मा न तो सुनता है, न देखता है, न सूँघता है, न स्वाद लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न चलता है, न मल-मूत्रका त्याग करता है और न मैथुनका सुख ही भोगता है। भाव यह है कि उस समय दसों इन्द्रियोंका कार्य सर्वथा बंद रहता है। केवल लोग कहते हैं कि इस समय यह पुरुष सो रहा है।* उसके जागनेपर पुनः वे सब इन्द्रियाँ मनसे पृथक् होकर अपना-अपना कार्य करने लगती हैं—ठीक वैसे ही, जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर उसकी किरणें पुनः सब ओर फैल जाती हैं'॥ २॥

**सम्बन्ध**—*अब गार्ग्यके प्रश्नका संक्षेपमें उत्तर देकर दो मन्त्रोंद्वारा यह भी बतलाते हैं कि सब इन्द्रियोंके लय होनेपर मनकी कैसी स्थिति रहती है—*

**प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यदगार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः॥ ३॥**

**एतस्मिन् पुरे**=इस शरीररूप नगरमें; **प्राणाग्नयः एव**=पाँच प्राणरूप अग्नियाँ ही; **जाग्रति**=जागती रहती हैं; **ह एषः अपानः वै**=यह प्रसिद्ध अपान ही; **गार्हपत्यः**=गार्हपत्य अग्नि है; **व्यानः**=व्यान; **अन्वाहार्यपचनः**=अन्वाहार्य-पचन नामक अग्नि (दक्षिणाग्नि) है; **गार्हपत्यात् यत् प्रणीयते**=गार्हपत्य अग्निसे जो उठाकर ले जायी जाती है (वह); **आहवनीयः**=आहवनीय अग्नि; **प्रणयनात्**=प्रणयन (उठाकर ले जाये जाने)-के कारण ही; **प्राणः**=प्राणरूप है॥ ३॥

**व्याख्या**—उस समय इस मनुष्य-शरीररूप नगरमें पाँच प्राणरूप अग्नियाँ ही जागती रहती हैं। यह गार्ग्यद्वारा पूछे हुए दूसरे प्रश्नका संक्षेपमें उत्तर है। यहाँ निद्राको यज्ञका रूप देनेके लिये पाँचों प्राणोंको अग्निरूप बतलाया है। यज्ञमें अग्निकी प्रधानता होती है, इसलिये यहाँ संक्षेपतः प्राणमात्रको अग्निके नामसे कह दिया। परंतु आगे इस यज्ञके रूपकमें किस प्राणवृत्तिकी किसके स्थानमें कल्पना करनी चाहिये, इसका स्पष्टीकरण करते हैं। कहना यह है कि शरीरमें जो प्राणकी अपान-वृत्ति है, यही मानो उस यज्ञकी 'गार्हपत्य' अग्नि है; 'व्यान' दक्षिणाग्नि है; गार्हपत्य अग्निरूप व्यानसे प्राण उठते हैं, इस कारण मुख्य प्राण ही इस यज्ञकी कल्पनामें आहवनीय अग्नि है। क्योंकि यज्ञमें आहवनीय अग्नि गार्हपत्यसे उठाकर लायी जाती है। पहले तीसरे प्रश्नके प्रसङ्गमें भी प्राणको 'अन्नरूप आहुति जिसमें हवन की जाती है' इस व्युत्पत्तिद्वारा आहवनीय अग्नि ही बताया है (३।५)॥ ३॥

**यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः। मनो ह वाव यजमानः। इष्टफलमेवोदानः। स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति॥ ४॥**

---

* यहाँ सुषुप्तिकालमें मनका व्यापार चालू रहता है या नहीं, इस विषयमें कुछ नहीं कहा। सब इन्द्रियोंका मनमें विलीन हो जाना तो बताया गया, किंतु मन भी किसीमें विलीन हो जाता है—यह बात नहीं कही गयी। महर्षि पतञ्जलि भी निद्राको चित्तकी एक वृत्ति मानते हैं (पा० यो०)। इससे तो यह जान पड़ता है कि मन विलीन नहीं होता। परंतु अगले मन्त्रमें पञ्चवृत्त्यात्मक प्राणको ही जागनेवाला बताया गया है, मनको नहीं; अतः मनका लय होता है या नहीं—यह बात स्पष्ट नहीं होती। पुनः चतुर्थ मन्त्रमें मनको यजमान बताकर उसके ब्रह्मलोकमें जानेकी बात कही गयी है। इससे यह कहा जा सकता है कि मनका भी लय हो जाता है।

**यत् उच्छ्वासनिःश्वासौ** = जो ऊर्ध्वश्वास और अधःश्वास हैं; **एतौ** = ये दोनों (मानो); **आहुती** = (अग्निहोत्रकी) दो आहुतियाँ हैं; [**एतौ यः** = इनको जो;] **समम्** = समभावसे (सब ओर); **नयति इति सः समानः** = पहुँचाता है और इसीलिये जो 'समान' कहलाता है, वही; [**होता** = हवन करनेवाला ऋत्विक् है;] **ह मनः वाव** = यह प्रसिद्ध मन ही; **यजमानः** = यजमान है; **इष्टफलम् एव** = अभीष्ट फल ही; **उदानः** = उदान है; **सः एनम्** = वह (उदान) ही इस; **यजमानम् अहः अहः** = मनरूप यजमानको प्रतिदिन (निद्राके समय); **ब्रह्म गमयति** = ब्रह्मलोकमें भेजता है अर्थात् हृदयगुहामें ले जाता है॥ ४॥

**व्याख्या**—यह जो मुख्य प्राणका श्वास-प्रश्वासके रूपमें शरीरके बाहर निकलना और भीतर लौट जाना है, वही मानो इस यज्ञमें आहुतियाँ पड़ती हैं; इन आहुतियोंद्वारा जो शरीरके पोषक तत्त्व शरीरमें प्रवेश कराये जाते हैं, वे ही हवि हैं। उस हविको समस्त शरीरमें आवश्यकतानुसार समभावसे पहुँचानेका कार्य समान वायुका है; इसलिये उसे समान कहते हैं। वही इस रूपकमें मानो 'होता' अर्थात् हवन करनेवाला ऋत्विक् है। अग्निरूप होनेपर भी आहुतियोंको पहुँचानेका कार्य करनेके कारण इसे 'होता' कहा गया है। पहले बताया हुआ मन ही मानो यजमान है और उदान वायु ही मानो उस यजमानका अभीष्ट फल है; क्योंकि जिस प्रकार अग्निहोत्र करनेवाले यजमानको उसका अभीष्ट फल उसे अपनी ओर आकर्षित करके कर्मफल भुगतानेके लिये कर्मानुसार स्वर्गादि लोकोंमें ले जाता है, उसी प्रकार यह उदान वायु मनको प्रतिदिन निद्राके समय उसके कर्मफलके भोगस्वरूप ब्रह्मलोकमें—परमात्माके निवासस्थानरूप हृदयगुहामें ले जाता है। वहाँ इस मनके द्वारा जीवात्मा निद्राजनित विश्रामरूप सुखका अनुभव करता है; क्योंकि जीवात्माका निवासस्थान भी वही है। यह बात छठे मन्त्रमें कही है। यहाँ '**ब्रह्म गमयति**' से यह बात नहीं समझनी चाहिये कि निद्राजनित सुख ब्रह्मप्राप्तिके सुखकी किसी भी अंशमें समानता कर सकता है; क्योंकि यह तो तामस सुख है और परब्रह्म परमेश्वरकी प्राप्तिका सुख तीनों गुणोंसे अतीत है॥ ४॥

**सम्बन्ध**—*अब तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हैं—*

**अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति। देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति॥ ५॥**

**अत्र स्वप्ने** = इस स्वप्न-अवस्थामें; **एषः देवः**=यह देव (जीवात्मा); **महिमानम्**=अपनी विभूतिका; **अनुभवति** = अनुभव करता है; **यत् दृष्टम् दृष्टम्** = जो बार-बार देखा हुआ है; **अनुपश्यति** = उसीको बार-बार देखता है; **श्रुतम् श्रुतम् एव अर्थम् अनुशृणोति** = बार-बार सुनी हुई बातोंको ही पुनः-पुनः सुनता है; **देशदिगन्तरैः च** = नाना देश और दिशाओंमें; **प्रत्यनुभूतम्** = बार-बार अनुभव किये हुए विषयोंको; **पुनः पुनः**=पुनः-पुनः; **प्रत्यनुभवति**=अनुभव करता है (इतना ही नहीं); **दृष्टम् च अदृष्टम् च**=देखे हुए और न देखे हुएको भी; **श्रुतम् च अश्रुतम् च**=सुने हुए और न सुने हुएको भी; **अनुभूतम् च** = अनुभव किये हुए और; **अननुभूतम् च** = अनुभव न किये हुएको भी; **सत् च असत् च** = विद्यमान और अविद्यमानको भी (इस प्रकार); **सर्वम् पश्यति** = सारी घटनाओंको देखता है; (तथा) **सर्वः ( सन् )** = स्वयं सब कुछ बनकर; **पश्यति** = देखता है॥ ५॥

**व्याख्या**—गार्ग्य मुनिने जो यह तीसरा प्रश्न किया था कि 'कौन देवता स्वप्नोंको देखता है?' उसका उत्तर महर्षि पिप्पलाद इस प्रकार देते हैं। इस स्वप्न-अवस्थामें जीवात्मा ही मन और सूक्ष्म इन्द्रियोंद्वारा अपनी विभूतिका अनुभव करता है। इसका पहले जहाँ कहीं भी जो कुछ बार-बार देखा, सुना और अनुभव किया हुआ है, उसीको यह स्वप्नमें बार-बार देखता, सुनता और अनुभव करता रहता है। परंतु यह नियम नहीं है कि जाग्रत्-अवस्थामें इसने जिस प्रकार, जिस ढंगसे और जिस जगह जो घटना देखी, सुनी और अनुभव की है, उसी प्रकार यह स्वप्नमें भी अनुभव करता है। अपितु स्वप्नमें जाग्रत्की किसी घटनाका कोई अंश किसी दूसरी घटनाके किसी अंशके साथ मिलकर एक नये ही रूपमें इसके अनुभवमें आता है; अतः कहा

जाता है कि स्वप्नकालमें यह देखे और न देखे हुएको भी देखता है, सुने और न सुने हुएको भी सुनता है, अनुभव किये हुए और अनुभव न किये हुएको भी अनुभव करता है। जो वस्तु वास्तवमें है उसे और जो नहीं है उसे भी, स्वप्नमें देख लेता है। इस प्रकार स्वप्नमें यह विचित्र ढंगसे सब घटनाओंका बार-बार अनुभव करता रहता है और स्वयं ही सब कुछ बनकर देखता है। उस समय जीवात्माके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं रहती॥ ५॥

**स यदा तेजसाभिभूतो भवत्यत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति॥ ६॥**

**सः यदा** = वह (मन) जब; **तेजसा अभिभूतः** = तेज (उदान वायु)-से अभिभूत; **भवति** = हो जाता है;* **अत्र एषः देवः** = इस स्थितिमें यह जीवात्मारूप देवता; **स्वप्नान्** = स्वप्नोंको; **न पश्यति** = नहीं देखता; **अथ** = तथा; **तदा**=उस समय; **एतस्मिन् शरीरे** = इस मनुष्य-शरीरमें (जीवात्माको); **एतत्** = इस; **सुखम्** = सुषुप्तिके सुखका अनुभव; **भवति** = होता है॥ ६॥

**व्याख्या**—गार्ग्य मुनिने चौथी बात यह पूछी थी कि 'निद्रामें सुखका अनुभव किसको होता है'? उसका उत्तर महर्षि इस प्रकार देते हैं। जब निद्राके समय यह मन उदान वायुके अधीन हो जाता है अर्थात् जब उदान वायु इस मनको जीवात्माके निवासस्थान हृदयमें पहुँचाकर मोहित कर देता है, उस निद्रा-अवस्थामें यह जीवात्मा मनके द्वारा स्वप्नकी घटनाओंको नहीं देखता। उस समय निद्राजनित सुखका अनुभव जीवात्माको ही होता है। इस शरीरमें सुख-दुःखोंको भोगनेवाला प्रत्येक अवस्थामें प्रकृतिस्थ पुरुष अर्थात् जीवात्मा ही है (गीता १३। २१)॥ ६॥

**स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते॥ ७॥**

**सः** = (पाँचवीं बात जो तुमने पूछी थी) वह (इस प्रकार समझनी चाहिये); **सोम्य** = हे प्रिय!; **यथा** = जिस प्रकार; **वयांसि** = बहुत-से पक्षी (सायंकालमें); **वासोवृक्षम्** = अपने निवासरूप वृक्षपर (आकर); **सम्प्रतिष्ठन्ते** = आरामसे ठहरते हैं (बसेरा लेते हैं); **ह एवम् वै तत् सर्वम्** = ठीक वैसे ही, वे (आगे बताये जानेवाले पृथिवी आदि तत्त्वोंसे लेकर प्राणतक) सब-के-सब; **परे आत्मनि** = परमात्मामें; **सम्प्रतिष्ठते** = सुखपूर्वक आश्रय पाते हैं॥ ७॥

**व्याख्या**—गार्ग्य मुनिने जो यह पाँचवीं बात पूछी थी कि 'ये मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और प्राण—सब-के-सब किसमें स्थित हैं—किसके आश्रित हैं?' उसका उत्तर महर्षि इस प्रकार देते हैं—'प्यारे गार्ग्य! आकाशमें उड़नेवाले पक्षिगण जिस प्रकार सायंकालमें लौटकर अपने निवासभूत वृक्षपर आरामसे बसेरा लेते हैं, ठीक उसी प्रकार आगे बतलाये जानेवाले पृथ्वीसे लेकर प्राणतक जितने तत्त्व हैं, वे सब-के-सब परब्रह्म पुरुषोत्तममें, जो कि सबके आत्मा हैं, आश्रय लेते हैं; क्योंकि वही इन सबके परम आश्रय हैं'॥ ७॥

**पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं च वाक्च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहङ्कारश्चाङ्कर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च॥ ८॥**

**पृथिवी च**=पृथिवी और; **पृथिवीमात्रा च**=उसकी तन्मात्रा (सूक्ष्म गन्ध) भी; **आपः च आपोमात्रा च**=जल और रसतन्मात्रा भी; **तेजः च तेजोमात्रा च**=तेज और रूप-तन्मात्रा भी; **वायुः च वायुमात्रा च**=वायु और स्पर्शतन्मात्रा भी; **आकाशः च आकाशमात्रा च**=आकाश और शब्द-तन्मात्रा भी; **चक्षुः च द्रष्टव्यम् च**=नेत्र-इन्द्रिय और देखनेमें आनेवाली वस्तु भी; **श्रोत्रम् च श्रोतव्यम् च**=श्रोत्र-इन्द्रिय और सुननेमें आनेवाली वस्तु भी;

---

* पहले तीसरे प्रकरणमें (३। ९-१०) बतला आये हैं कि उदान वायुका नाम तेज है। इस प्रकरणमें भी कहा गया है कि उदान वायु ही मनको ब्रह्मलोकमें अर्थात् हृदयमें ले जाता है, अतः यहाँ तेजसे अभिभूत होनेका अर्थ जीवका उदान वायुसे अक्रान्त हो जाना है—यह बात समझनी चाहिये।

**घ्राणम् च घ्रातव्यम् च**=घ्राणेन्द्रिय और सूँघनेमें आनेवाली वस्तु भी; **रसः च रसयितव्यम् च**=रसना-इन्द्रिय और रसनाके विषय भी; **त्वक् च स्पर्शयितव्यम् च**=त्वक्-इन्द्रिय और स्पर्शमें आनेवाली वस्तु भी; **वाक् च वक्तव्यम् च**=वाक्-इन्द्रिय और बोलनेमें आनेवाला शब्द भी; **हस्तौ च आदातव्यम् च**=दोनों हाथ और पकड़नेमें आनेवाली वस्तु भी; **उपस्थः च आनन्दयितव्यम् च**=उपस्थ-इन्द्रिय और उसका विषय भी; **पायुः च विसर्जयितव्यम् च**=गुदा-इन्द्रिय और उसके द्वारा परित्यागयोग्य वस्तु भी; **पादौ च गन्तव्यम् च**=दोनों चरण और गन्तव्य स्थान भी; **मनः च मन्तव्यम् च**=मन और मननमें आनेवाली वस्तु भी; **बुद्धिः च बोद्धव्यम् च**=बुद्धि और जाननेमें आनेवाली वस्तु भी; **अहंकारः च अहंकर्तव्यम् च**=अहंकार और उसका विषय भी; **चित्तम् च चेतयितव्यम् च**=चित्त और चिन्तनमें आनेवाली वस्तु भी; **तेजः च विद्योतयितव्यम् च**=प्रभाव और उसका विषय भी; **प्राणः च विधारयितव्यम् च**=प्राण और प्राणके द्वारा धारण किये जानेवाले पदार्थ भी (ये सब-के-सब परमात्माके आश्रित हैं)॥ ८॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें यह बात कही गयी है कि स्थूल और सूक्ष्म पाँचों महाभूत, दसों इन्द्रियाँ और उनके विषय, चारों प्रकारके अन्तःकरण और उनके विषय तथा पाँच भेदोंवाला प्राण-वायु—सब-के-सब परमात्माके ही आश्रित हैं। कहना यह है कि स्थूल पृथ्वी और उसका कारण गन्ध-तन्मात्रा, स्थूल जल-तत्त्व और उसका कारण रस-तन्मात्रा, स्थूल तेज-तत्त्व और उसका कारण रूप-तन्मात्रा, स्थूल वायु-तत्त्व और उसका कारण स्पर्श-तन्मात्रा, स्थूल आकाश और उसका कारण शब्द-तन्मात्रा—इस प्रकार अपने कारणोंसहित पाँचों भूत तथा नेत्र-इन्द्रिय और उसके द्वारा देखनेमें आनेवाली वस्तुएँ, श्रोत्र-इन्द्रिय और उसके द्वारा जो कुछ सुना जा सकता है वह सब, घ्राणेन्द्रिय और उसके द्वारा सूँघनेमें आनेवाले पदार्थ, रसना-इन्द्रिय और उसके द्वारा आस्वादनमें आनेवाले खट्टे-मीठे आदि सब प्रकारके रस, त्वचा-इन्द्रिय और उसके द्वारा स्पर्श करनेमें आनेवाले सब पदार्थ, वाक्-इन्द्रिय और उसके द्वारा बोले जानेवाले शब्द, दोनों हाथ और उनके द्वारा पकड़नेमें आनेवाली सब वस्तुएँ, दोनों पैर और उनके गन्तव्य स्थान, उपस्थ-इन्द्रिय और मैथुनका सुख, गुदा-इन्द्रिय और उसके द्वारा त्यागा जानेवाला मल, मन और उसके द्वारा मनन करनेमें आनेवाले सब पदार्थ, बुद्धि और उसके द्वारा जाननेमें आनेवाले सब पदार्थ, अहंकार और उसके विषय, चित्त और चित्तके द्वारा चिन्तनमें आनेवाले पदार्थ, प्रभाव और प्रभावसे प्रभावित होनेवाले, पाँच वृत्तिवाला प्राण और उसके द्वारा जीवन देकर धारण किये जानेवाले सब शरीर—ये सब-के-सब इनके कारणभूत परमेश्वरके ही आश्रित हैं॥ ८॥

**एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते॥ ९॥**

**एषः**=यह जो; **द्रष्टा स्प्रष्टा**=देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला; **श्रोता घ्राता**=सुननेवाला, सूँघनेवाला; **रसयिता मन्ता**=स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला; **बोद्धा कर्ता**=जाननेवाला तथा कर्म करनेवाला; **विज्ञानात्मा**=विज्ञानस्वरूप; **पुरुषः**=पुरुष (जीवात्मा) है; **सः हि**=वह भी; **अक्षरे**=अविनाशी; **परे आत्मनि**=परमात्मामें; **सम्प्रतिष्ठते**=भलीभाँति स्थित है॥ ९॥

**व्याख्या**—देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, जाननेवाला तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों और मनके द्वारा समस्त कर्म करनेवाला जो यह विज्ञानस्वरूप पुरुष—जीवात्मा है, यह भी उन परम अविनाशी सबके आत्मा परब्रह्म पुरुषोत्तममें ही स्थिति पाता है। उन्हें प्राप्त कर लेनेपर ही इसे वास्तविक शान्ति मिलती है; अतः इसके भी परम आश्रय वे परमेश्वर ही हैं॥ ९॥

**परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य। स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः॥ १०॥**

**ह यः वै**=निश्चय ही जो कोई भी; **तत् अच्छायम्**=उस छायारहित; **अशरीरम्**=शरीररहित; **अलोहितम्**=लाल, पीले आदि रंगोंसे रहित; **शुभ्रम् अक्षरम्**=विशुद्ध अविनाशी पुरुषको; **वेदयते**=जानता है; **सः**=वह; **परम् अक्षरम्**

**एव**=परम अविनाशी परमात्माको ही; **प्रतिपद्यते**=प्राप्त हो जाता है; **सोम्य**=हे प्रिय!; **यः तु (एवम्)**=जो कोई ऐसा है; **सः सर्वज्ञः**=वह सर्वज्ञ (और); **सर्वः भवति**=सर्वरूप हो जाता है; **तत् एषः**=उस विषयमें यह (अगला); **श्लोकः**=श्लोक (है)॥ १०॥

**व्याख्या**—यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जो कोई भी मनुष्य उन छायारहित, शरीररहित, लाल-पीले आदि सब रंगोंसे रहित, विशुद्ध अविनाशी परमात्माको जान लेता है, वह परम अक्षर परमात्माको ही प्राप्त हो जाता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे सोम्य! जो कोई भी ऐसा है अर्थात् जो भी उस परब्रह्म परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है, वह सर्वज्ञ और सर्वरूप हो जाता है। इस विषयमें निम्नलिखित ऋचा है॥ १०॥

**विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र।**
**तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति॥ ११॥**

**यत्र**=जिसमें; **प्राणाः**=समस्त प्राण (और); **भूतानि च**=पाँचों भूत तथा; **सर्वैः देवैः सह**=सम्पूर्ण इन्द्रिय और अन्तःकरणके सहित; **विज्ञानात्मा**=विज्ञानस्वरूप आत्मा; **सम्प्रतिष्ठन्ति**=आश्रय लेते हैं; **सोम्य**=हे प्रिय! **तत् अक्षरम्**=उस अविनाशी परमात्माको; **यः तु वेदयते**=जो कोई जान लेता है, **सः सर्वज्ञः**=वह सर्वज्ञ है; **सर्वम् एव**=(वह) सर्वस्वरूप परमेश्वरमें; **आविवेश**=प्रविष्ट हो जाता है; **इति**=इस प्रकार (इस प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ)॥ ११॥

**व्याख्या**—सबके परमकारण जिन परमेश्वरका समस्त प्राण और पाँचों महाभूत तथा समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरणके सहित स्वयं विज्ञान-स्वरूप जीवात्मा—ये सब आश्रय लेते हैं, उन परम अक्षर अविनाशी परमात्माको जो कोई जान लेता है, वह सर्वज्ञ है तथा सर्वरूप परमेश्वरमें प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार यह चतुर्थ प्रश्न समाप्त हुआ॥ ११॥

**॥ चतुर्थ प्रश्न समाप्त॥ ४॥**

## पञ्चम प्रश्न

**अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ। स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत। कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति॥ १॥**

**अथ ह एनम्**=उसके बाद इन ख्यातनामा महर्षि पिप्पलादसे; **शैब्यः सत्यकामः**=शिबिपुत्र सत्यकामने; **पप्रच्छ**=पूछा; **भगवन्**=भगवन्!; **मनुष्येषु**=मनुष्योंमेंसे; **सः यः ह वै**=वह जो कोई भी; **प्रायणान्तम्**=मृत्युपर्यन्त; **तत् ओंकारम्**=उस ओंकारका; **अभिध्यायीत**=भलीभाँति ध्यान करता है; **सः तेन**=वह उस उपासनाके बलसे; **कतमम्**=किस; **लोकम्**=लोकको; **वाव जयति**=निस्सन्देह जीत लेता है; **इति**=यह (मेरा प्रश्न है)॥ १॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें सत्यकामने ओंकारकी उपासनाके विषयमें प्रश्न किया है। उसने यही जिज्ञासा की है कि जो मनुष्य आजीवन ओंकारकी भलीभाँति उपासना करता है, उसे उस उपासनाके द्वारा कौन-से लोककी प्राप्ति होती है अर्थात् उसका क्या फल मिलता है॥ १॥

**तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः।**
**तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति॥ २॥**

**तस्मै सः ह उवाच**=उससे उन प्रसिद्ध महर्षिने कहा; **सत्यकाम**=हे सत्यकाम!; **एतत् वै**=निश्चय ही यह; **यत् ओंकार**=जो ओंकार है; **परम् ब्रह्म च अपरम् च**=(वही) परब्रह्म और अपर ब्रह्म भी है; **तस्मात्**=इसलिये; **विद्वान्**=इस प्रकारका ज्ञान रखनेवाला मनुष्य; **एतेन एव**=इस एक ही; **आयतनेन**=अवलम्बसे (अर्थात् प्रणवमात्रके चिन्तनसे); **एकतरम्**=अपर और परब्रह्ममेंसे किसी एकका; **अन्वेति**=(अपनी श्रद्धाके अनुसार) अनुसरण करता है॥ २॥

**व्याख्या**—इसके उत्तरमें महर्षि पिप्पलाद 'ओम्' इस अक्षरकी उसके लक्ष्यभूत परब्रह्म पुरुषोत्तमके साथ एकता करते हुए कहते हैं—सत्यकाम! यह जो 'ॐ' है, वह अपने लक्ष्यभूत परब्रह्म परमेश्वरसे भिन्न नहीं है। इसलिये यही परब्रह्म है और यही उन परब्रह्मसे प्रकट हुआ उनका विराट्-स्वरूप—अपर ब्रह्म भी है। केवल इसी एक ओंकारका जप, स्मरण और चिन्तन करके उसके द्वारा अपने इष्टको चाहनेवाला विज्ञानसम्पन्न मनुष्य उसे पा लेता है। भाव यह है कि जो मनुष्य परमेश्वरके विराट्-स्वरूप—इस जगत्के ऐश्वर्यमय किसी भी अङ्गको प्राप्त करनेकी इच्छासे ओंकारकी उपासना करता है, वह अपनी भावनाके अनुसार विराट्-स्वरूप परमेश्वरके किसी एक अङ्गको प्राप्त करता है और जो इसके अन्तर्यामी आत्मा पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तमको लक्ष्य बनाकर उनको पानेके लिये निष्कामभावसे इसकी उपासना करता है, वह परब्रह्म पुरुषोत्तमको पा लेता है। यही बात अगले मन्त्रोंमें भी स्पष्ट की गयी है॥ २॥

**स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति॥ ३॥**

**सः यदि**=वह उपासक यदि; **एकमात्रम्**=एक मात्रासे युक्त ओंकारका; **अभिध्यायीत**=भलीभाँति ध्यान करे तो; **सः तेन एव**=वह उस उपासनासे ही; **संवेदितः**=अपने ध्येयकी ओर प्रेरित किया हुआ; **तूर्णम् एव**=शीघ्र ही; **जगत्याम्**=पृथ्वीमें; **अभिसम्पद्यते**=उत्पन्न हो जाता है; **तम् ऋचः**=उसको ऋग्वेदकी ऋचाएँ; **मनुष्यलोकम्**=मनुष्य-शरीर; **उपनयन्ते**=प्राप्त करा देती हैं; **तत्र सः**=वहाँ वह उपासक; **तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नः**=तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे सम्पन्न होकर; **महिमानम्**=महिमाका; **अनुभवति**=अनुभव करता है॥ ३॥

**व्याख्या**—ओंकारका चिन्तन करनेवाला मनुष्य यदि विराट् परमेश्वरके भूः, भुवः और स्वः—इन तीनों रूपोंमेंसे भूलोकके ऐश्वर्यमें आसक्त होकर उसकी प्राप्तिके लिये ओंकारकी उपासना करता है तो वह मरनेके बाद अपने प्रापणीय ऐश्वर्यकी ओर प्रेरित होकर तत्काल पृथ्वीलोकमें आ जाता है। ॐकारकी पहली मात्रा ऋग्वेदस्वरूपा है, उसका पृथ्वीलोकसे सम्बन्ध है; अतः उसके चिन्तनसे साधकको ऋग्वेदकी ऋचाएँ पुनः मनुष्य-शरीरमें प्रविष्ट करा देती हैं। वह उस नवीन मनुष्य-जन्ममें तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे सम्पन्न उत्तम आचरणोंवाला श्रेष्ठ मनुष्य बनकर उपयुक्त ऐश्वर्यका उपभोग करता है। अर्थात् उसे नीची योनियोंमें नहीं भटकना पड़ता, वह मरनेके बाद मनुष्य होकर पुनः शुभ कर्म करनेमें समर्थ हो जाता है और वहाँ नाना प्रकारके सुखोंका उपभोग करता है॥ ३॥

**अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम्। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते॥ ४॥**

**अथ यदि**=परंतु यदि; **द्विमात्रेण**=दो मात्राओंसे युक्त (ओंकारका); [**अभिध्यायीत**=अच्छी प्रकार ध्यान करता है तो (उससे);] **मनसि**=मनोमय चन्द्रलोकको; **सम्पद्यते**=प्राप्त होता है; **सः यजुर्भिः**=वह यजुर्वेदके मन्त्रोंद्वारा; **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्षमें स्थित; **सोमलोकम्**=चन्द्रलोकको; **उन्नीयते**=ऊपरकी ओर ले जाया जाता है; **सः सोमलोके**=वह चन्द्रलोकमें; **विभूतिम्**=वहाँके ऐश्वर्यका; **अनुभूय**=अनुभव करके; **पुनः आवर्तते**=पुनः इस लोकमें लौट आता है॥ ४॥

**व्याख्या**—यदि साधक दो मात्रावाले ओंकारकी उपासना करता है अर्थात् उस विराट्स्वरूप परमेश्वरकी भूः और भुवः—इन दो मात्राओंकी अर्थात् स्वर्गलोकतकके ऐश्वर्यकी अभिलाषासे उसीको लक्ष्य बनाकर ओंकारकी उपसना करता है तो वह मनोमय चन्द्रलोकको प्राप्त होता है; उसको यजुर्वेदके मन्त्र अन्तरिक्षमें ऊपरकी ओर चन्द्रलोकमें पहुँचा देते हैं। उस विनाशशील स्वर्गलोकमें नाना प्रकारके ऐश्वर्यका उपभोग करके अपनी उपासनाके पुण्यका क्षय हो जानेपर पुनः मृत्युलोकमें आ जाता है। वहाँ उसे अपने पूर्व-कर्मानुसार मनुष्य-शरीर या उससे कोई नीची योनि मिल जाती है॥ ४॥

**यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः॥ ५॥**

**पुनः यः**=परंतु जो; **त्रिमात्रेण**=तीन मात्राओंवाले; **ओम् इति**='ओम्' रूप; **एतेन**=इस; **अक्षरेण एव**=अक्षरके द्वारा ही; **एतम् परम्**=इस परम; **पुरुषम्**=पुरुषका; **अभिध्यायीत**=निरन्तर ध्यान करता है; **सः तेजसि**=वह तेजोमय; **सूर्ये सम्पन्नः**=सूर्यलोकमें जाता है; (तथा) **यथा पादोदरः**=जिस प्रकार सर्प; **त्वचा विनिर्मुच्यते**=केंचुलीसे अलग हो जाता है; **एवम् ह वै**=ठीक उसी तरह; **सः पाप्मना**=वह पापोंसे; **विनिर्मुक्तः**=सर्वथा मुक्त हो जाता है; **सः**=(इसके बाद) वह; **सामभिः**=सामवेदकी श्रुतियोंद्वारा; **ब्रह्मलोकम् उन्नीयते**=ऊपर ब्रह्मलोकमें ले जाया जाता है; **सः एतस्मात्**=वह इस; **जीवघनात्**=जीवसमुदायरूप; **परात् परम्**=परतत्त्वसे अत्यन्त श्रेष्ठ; **पुरिशयम्**=अन्तर्यामी; **पुरुषम्**=परमपुरुष पुरुषोत्तमको; **ईक्षते**=साक्षात् कर लेता है; **तत् एतौ**=इस विषयमें ये (अगले); **श्लोकौ भवतः**=दो श्लोक (हैं)॥ ५॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें 'पुनः' शब्दके प्रयोगसे यह सूचित होता है कि उपर्युक्त कथनके अनुसार इस लोक और स्वर्गलोकतकके ऐश्वर्यकी अभिलाषासे अपर ब्रह्मको लक्ष्य बनाकर ओंकारकी उपासना करनेवाले साधकोंसे विलक्षण साधकका यहाँ वर्णन किया गया है। उपासनाका सर्वोत्तम प्रकार यही है—यह भाव प्रकट करनेके लिये ही इस मन्त्रमें 'यदि' पदका प्रयोग भी नहीं किया गया है; क्योंकि इसमें कोई विकल्प नहीं है। इस मन्त्रमें यह भी स्पष्टरूपसे बतला दिया गया है कि ओंकार उस परब्रह्मका नाम है, इसके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वरकी उपासना की जाती है। मन्त्रमें कहा गया है कि जो कोई साधक इन तीन मात्राओंवाले ओंकारस्वरूप अक्षरद्वारा परब्रह्म परमेश्वरकी उपासना करता है, वह जैसे सर्प केंचुलीसे अलग हो जाता है—उसी प्रकार सब प्रकारके कर्मबन्धनोंसे छूटकर सर्वथा निर्विकार हो जाता है। उसे सामवेदके मन्त्र तेजोमय सूर्यमण्डलमेंसे ले जाकर सर्वोपरि ब्रह्मलोकमें पहुँचा देते हैं। वहाँ वह जीव-समुदायरूप चेतनतत्त्वसे अत्यन्त श्रेष्ठ उन परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त हो जाता है, जो सम्पूर्ण जगत्को अपनी शक्तिके किसी एक अंशमें धारण किये हुए हैं और सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं। इसी विषयको स्पष्ट करनेवाले ये दो आगे कहे हुए श्लोक हैं॥ ५॥

**तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः।**
**क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः॥ ६॥**

**तिस्रः मात्राः**=ओंकारकी तीनों मात्राएँ ('अ', 'उ' तथा 'म'); **अन्योन्यसक्ताः**=एक-दूसरीसे संयुक्त रहकर; **प्रयुक्ताः**=प्रयुक्त की गयी हों; **अनविप्रयुक्ताः**=या पृथक्-पृथक् एक-एक ध्येयके चिन्तनमें इनका प्रयोग किया जाय (दोनों प्रकारसे ही वे); **मृत्युमत्यः**=मृत्युयुक्त हैं; **बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु**=बाहर, भीतर और बीचकी; **क्रियासु**=क्रियाओंमें; **सम्यक्प्रयुक्तासु**=पूर्णतया इन मात्राओंका प्रयोग किये जानेपर; **ज्ञः न कम्पते**=उस परमेश्वरको जाननेवाला ज्ञानी विचलित नहीं होता॥ ६॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें यह भाव दिखाया गया है कि ओंकारवाच्य परब्रह्म परमेश्वरका जो यह जगत्रूप विराट्स्वरूप है अर्थात् जो कुछ देखने, सुनने और समझनेमें आता है, यह उसका वास्तविक परम अविनाशी स्वरूप नहीं है, यह परिवर्तनशील है; अतः इसमें रहनेवाला जीव अमर नहीं होता। वह चाहे ऊँची-से-ऊँची योनिको प्राप्त कर ले, परंतु जन्म-मृत्युके चक्रसे नहीं छूटता। इसके एक अङ्ग पृथ्वीलोककी या पृथ्वी और अन्तरिक्ष इन दोनों लोकोंकी अथवा तीनों लोकोंको मिलाकर सम्पूर्ण जगत्की अभिलाषा रखते हुए जो उपासना करता है, जिसका इस जगत्के आत्मरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमकी ओर लक्ष्य नहीं है, वरं जो जगत्के बाह्य स्वरूपमें ही आसक्त हो रहा है, वह उन्हें नहीं पाता, अतः बार-बार जन्मता-मरता रहता है। उन्हें तो वही साधक पा सकता है, जो अपने शरीरके बाहर, भीतर और शरीरके मध्यस्थान—हृदयदेशमें एवं उसके द्वारा की जानेवाली बाहरी, भीतरी और बीचकी समस्त क्रियाओंमें सर्वत्र ओंकारके वाच्यार्थरूप एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तमको व्याप्त समझता

है और ओंकारके द्वारा उनकी उपासना करता है—उन्हें पानेकी ही अभिलाषासे ओंकारका जप, स्मरण और चिन्तन करता है, वह ज्ञानी परमात्माको पाकर फिर कभी अपनी स्थितिसे विचलित नहीं होता॥ ६॥

**ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते।**
**तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति॥ ७॥**

**ऋग्भिः**=(एक मात्राकी उपासनासे उपासक) ऋचाओंद्वारा; **एतम्**=इस मनुष्यलोकमें (पहुँचाया जाता है); **यजुर्भिः**=(दूसरा दो मात्राओंकी उपासना करनेवाला) यजुःश्रुतियोंद्वारा; **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्षमें (चन्द्रलोकतक पहुँचाया जाता है); **सामभिः**=(पूर्णरूपसे ओंकारकी उपासना करनेवाला) सामश्रुतियोंद्वारा; **तत्**=उस ब्रह्मलोकमें (पहुँचाया जाता है); **यत्**=जिसको; **कवयः**=ज्ञानीजन; **वेदयन्ते**=जानते हैं; **विद्वान्**=विवेकशील साधक; **ओङ्कारेण एव**=केवल ओंकाररूप; **आयतनेन**=अवलम्बनके द्वारा ही; **तम्**=उस परब्रह्म पुरुषोत्तमको; **अन्वेति**=पा लेता है; **यत्**=जो; **तत्**=वह; **शान्तम्**=परम शान्त; **अजरम्**=जरारहित; **अमृतम्**=मृत्युरहित; **अभयम्**=भयरहित; **च**=और; **परम् इति**=सर्वश्रेष्ठ है॥ ७॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें तीसरे, चौथे और पाँचवें मन्त्रोंके भावका संक्षेपमें वर्णन करके ब्राह्मण-ग्रन्थके वाक्योंमें कही हुई बातका समर्थन किया गया है। भाव यह है कि एक मात्रा अर्थात् एक अङ्गको लक्ष्य बनाकर उपासना करनेवाले साधकको ऋग्वेदकी ऋचाएँ मनुष्यलोकमें पहुँचा देती हैं। दो मात्राकी उपासना करनेवालेको अर्थात् जगत्के ऊँचे-से-ऊँचे—स्वर्गीय ऐश्वर्यको लक्ष्य बनाकर ओंकारकी उपासना करनेवालेको यजुर्वेदके मन्त्र चन्द्रलोकमें ले जाते हैं और जो इन सबमें परिपूर्ण इनके आत्मरूप परमेश्वरकी ओंकारके द्वारा उपासना करता है, उसको सामवेदके मन्त्र उस ब्रह्मलोकमें पहुँचा देते हैं, जिसे ज्ञानीजन जानते हैं। सम्पूर्ण रहस्यको समझनेवाले बुद्धिमान् मनुष्य बाह्य जगत्में आसक्त न होकर ओंकारकी उपासनाद्वारा समस्त जगत्के आत्मरूप उन परब्रह्म परमात्माको पा लेते हैं, जो परम शान्त और सब प्रकारके विकारोंसे रहित हैं; जहाँ न बुढ़ापा है, न मृत्यु है; जो अजर, अमर, निर्भय, सर्वश्रेष्ठ एवं परम पुरुषोत्तम हैं॥ ७॥

॥ पञ्चम प्रश्न समाप्त॥ ५॥

## षष्ठ प्रश्न

**अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ—भगवन्हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत। षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ। तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुम्। स तूष्णीं रथमारुह्य प्रववाज। तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति॥ १॥**

**अथ**=फिर; **ह एनम्**=इन प्रसिद्ध महात्मा (पिप्पलाद)-से; **भारद्वाजः**=भरद्वाजपुत्र; **सुकेशा**=सुकेशाने; **पप्रच्छ**=पूछा—; **भगवन्**=भगवन्!; **कौसल्यः**=कोसलदेशीय; **राजपुत्रः**=राजकुमार; **हिरण्यनाभः**=हिरण्यनाभने; **माम् उपेत्य**=मेरे पास आकर; **एतम् प्रश्नम्**=यह प्रश्न; **अपृच्छत**=पूछा; **भारद्वाज**=हे भारद्वाज! (क्या तुम); **षोडशकलम्**=सोलह कलाओंवाले; **पुरुषम्**=पुरुषको; **वेत्थ**=जानते हो; **तम् कुमारम्**=(तब) उस राजकुमारसे; **अहम्**=मैंने; **अब्रुवम्**=कहा—; **अहम्**=मैं; **इमम्**=इसे; **न वेद**=नहीं जानता; **यदि**=यदि; **अहम्**=मैं; **इमम् अवेदिषम्**=इसे जानता होता (तो); **ते**=तुझे; **कथम् न अवक्ष्यम् इति**=क्यों नहीं बताता; **एषः वैः**=वह मनुष्य अवश्य; **समूलः**=मूलके सहित; **परिशुष्यति**=सर्वथा सूख जाता है (नष्ट हो जाता है); **यः**=जो; **अनृतम्**=झूठ; **अभिवदति**=बोलता है; **तस्मात्**=इसलिये (मैं); **अनृतम्**=झूठ; **वक्तुम्**=बोलनेमें; **न अर्हामि**=समर्थ नहीं हूँ; **सः**=वह राजकुमार (मेरा उत्तर सुनकर); **तूष्णीम्**=चुपचाप; **रथम्**=रथपर; **आरुह्य**=सवार होकर; **प्रववाज**=चला गया; **तम्**=उसीको; **त्वा पृच्छामि**=मैं आपसे पूछ रहा हूँ; **असौ**=वह (सोलह कलाओंवाला); **पुरुषः**=पुरुष; **क्व इति**=कहाँ है?॥ १॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें सुकेशा ऋषिने अपनी अल्पज्ञता और सत्य-भाषणका महत्त्व प्रकट करते हुए सोलह कलाओंवाले पुरुषके विषयमें प्रश्न किया है। वे बोले—"भगवन्! एक बार कोसलदेशका राजकुमार

हिरण्यनाभ मेरे पास आया था। उसने मुझसे पूछा—'भारद्वाज! क्या तुम सोलह कलाओंवाले पुरुषके विषयमें जानते हो?' मैंने उससे स्पष्ट कह दिया—'भाई! मैं उसे नहीं जानता; जानता होता तो तुम्हें अवश्य बता देता। न बतानेका कोई कारण नहीं है। तुम अपने मनमें यह न समझना कि मैंने बहाना करके तुम्हारे प्रश्नको टाल दिया है, क्योंकि मैं झूठ नहीं बोलता। झूठ बोलनेवालेका मूलोच्छेद हो जाता है, वह इस लोकमें या परलोकमें कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं पा सकता।' मेरी इस बातको सुनकर राजकुमार चुपचाप रथपर सवार होकर जैसे आया था, वैसे ही लौट गया। अब मैं आपके द्वारा उसी सोलह कलाओंवाले पुरुषका तत्त्व जानना चाहता हूँ; कृपया आप मुझे बतलायें कि वह कहाँ है और उसका स्वरूप क्या है?''॥ १॥

**तस्मै स होवाच। इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति॥ २॥**

**तस्मै**=उससे; **सः ह**=वे सुप्रसिद्ध महर्षि; **उवाच**=बोले; **सोम्य**=हे प्रिय!; **इह**=यहाँ; **अन्तःशरीरे**=इस शरीरके भीतर; **एव**=ही; **सः**=वह; **पुरुषः**=पुरुष है; **यस्मिन्**=जिसमें; **एताः**=ये; **षोडश**=सोलह; **कलाः**=कलाएँ; **प्रभवन्ति इति**=प्रकट होती हैं॥ २॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें उस सोलह कलाओंवाले पुरुषका संकेतमात्र किया गया है। महर्षि पिप्पलाद कहते हैं—'प्रिय सुकेशा! जिन परमेश्वरसे सोलह कलाओंका समुदाय सम्पूर्ण जगद्रूप उनका विराट् शरीर उत्पन्न हुआ है, वे ही पुरुष हैं, उनको खोजनेके लिये कहीं अन्यत्र नहीं जाना है, वे हमारे इस शरीरके भीतर ही विराजमान हैं।' भाव यह है कि जब मनुष्यके हृदयमें परमात्माको पानेके लिये उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो जाती है, तब वे उसे वहीं उसके हृदयमें ही मिल जाते हैं॥ २॥

**सम्बन्ध**—*उन परब्रह्म पुरुषोत्तमका तत्त्व समझानेके लिये संक्षेपसे सृष्टिक्रमका वर्णन करते हैं—*

**स ईक्षांचक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति॥ ३॥**

**सः**=उसने; **ईक्षांचक्रे**=विचार किया (कि); **कस्मिन्**=(शरीरसे) किसके; **उत्क्रान्ते**=निकल जानेपर; **अहम् उत्क्रान्तः**=मैं (भी) निकला हुआ (-सा); **भविष्यामि**=हो जाऊँगा; **वा**=तथा; **कस्मिन् प्रतिष्ठिते**=किसके स्थित रहनेपर; **प्रतिष्ठास्यामि इति**=मैं स्थित रहूँगा॥ ३॥

**व्याख्या**—महासर्गके आदिमें जगत्की रचना करनेवाले परमपुरुष परमेश्वरने विचार किया कि 'मैं जिस ब्रह्माण्डकी रचना करना चाहता हूँ, उसमें एक ऐसा कौन-सा तत्त्व डाला जाय कि जिसके न रहनेपर मैं स्वयं भी उसमें न रह सकूँ अर्थात् मेरी सत्ता स्पष्टरूपसे व्यक्त न रहे और जिसके रहनेपर मेरी सत्ता स्पष्ट प्रतीत होती रहे'॥ ३॥

**स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च॥ ४॥**

**सः**=उसने; **प्राणम् असृजत**=(यह सोचकर सबसे पहले) प्राणकी रचना की; **प्राणात् श्रद्धाम्**=प्राणके बाद श्रद्धाको (उत्पन्न किया); **खम् वायुः ज्योतिः आपः पृथिवी**=(उसके बाद क्रमशः) आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी (ये पाँच महाभूत प्रकट हुए; फिर); **मनः इन्द्रियम्**=मन (अन्तःकरण) और इन्द्रियसमुदाय (की उत्पत्ति हुई); **अन्नम्**=(अनन्तर) अन्न हुआ; **अन्नात्**=अन्नसे; **वीर्यम्**=वीर्य (की रचना हुई, फिर); **तपः**=तप; **मन्त्राः**=नाना प्रकारके मन्त्र; **कर्म**=नाना प्रकारके कर्म; **च लोकाः**=और उनके फलरूप भिन्न-भिन्न लोकों (का निर्माण हुआ); **च**=और; **लोकेषु**=उन लोकोंमें; **नाम**=नाम (की रचना हुई)॥ ४॥

**व्याख्या**—परब्रह्म परमेश्वरने सर्वप्रथम सबके प्राणरूप सर्वात्मा हिरण्यगर्भको बनाया। उसके बाद शुभकर्ममें प्रवृत्त करानेवाली श्रद्धा अर्थात् आस्तिक-बुद्धिको प्रकट करके फिर क्रमशः शरीरके उपादानभूत आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—इन पाँच महाभूतोंकी सृष्टि की। इन पाँच महाभूतोंका कार्य ही यह दृश्यमान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है। पाँच महाभूतोंके बाद परमेश्वरने मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारोंके समुदायरूप अन्तःकरणको रचा। फिर विषयोंके ज्ञान एवं कर्मके लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियोंको उत्पन्न

किया, फिर प्राणियोंके शरीरकी स्थितिके लिये अन्नकी और अन्नके परिपाकद्वारा बलकी सृष्टि की। उसके बाद अन्त:करण और इन्द्रियोंके संयमरूप तपका प्रादुर्भाव किया। उपासनाके लिये भिन्न-भिन्न मन्त्रोंकी कल्पना की। अन्त:करणके संयोगसे इन्द्रियोंद्वारा किये जानेवाले कर्मोंका निर्माण किया। उनके भिन्न-भिन्न फलरूप लोकोंको बनाया और उन सबके नाम-रूपोंकी रचना की। इस प्रकार सोलह कलाओंसे युक्त इस ब्रह्माण्डकी रचना करके जीवात्माके सहित परमेश्वर स्वयं इसमें प्रविष्ट हो गये; इसीलिये वे सोलह कलाओंवाले पुरुष कहलाते हैं। हमारा यह मनुष्य-शरीर भी ब्रह्माण्डका ही एक छोटा-सा नमूना है, अत: परमेश्वर जिस प्रकार इस सारे ब्रह्माण्डमें हैं, उसी प्रकार हमारे इस शरीरमें भी हैं और इस शरीरमें भी वे सोलह कलाएँ वर्तमान हैं। उन हृदयस्थ परमदेव पुरुषोत्तमको जान लेना ही उस सोलह कलावाले पुरुषको जान लेना है॥ ४॥

**सम्बन्ध**—*सर्गके आरम्भका वर्णन करके जिन परब्रह्मका लक्ष्य कराया गया, उन्हींका अब प्रलयके वर्णनसे लक्ष्य कराते हैं—*

**स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः॥ ५॥**

**सः**=वह (प्रलयका दृष्टान्त) इस प्रकार है; **यथा**=जिस प्रकार; **इमाः**=ये; **नद्यः**=नदियाँ; **समुद्रायणाः**=समुद्रकी ओर लक्ष्य करके जाती; **स्यन्दमानाः**=(और) बहती हुई; **समुद्रम्**=समुद्रको; **प्राप्य**=पाकर; **अस्तम् गच्छन्ति**=(उसीमें) विलीन हो जाती हैं; **तासाम् नामरूपे**=उनके नाम और रूप; **भिद्येते**=नष्ट हो जाते हैं; **समुद्रः इति एवम्**=(फिर) समुद्र इस एक नामसे ही; **प्रोच्यते**=पुकारी जाती हैं; **एवम् एव**=इसी प्रकार; **अस्य परिद्रष्टुः**=सब ओरसे पूर्णतया देखनेवाले इन परमेश्वरकी; **इमाः**=ये (ऊपर बतायी हुई); **षोडश कलाः**=सोलह कलाएँ; **पुरुषायणाः**=जिनका परमाधार और परमगति पुरुष है; **पुरुषम् प्राप्य**=(प्रलयकालमें) परमपुरुष परमात्माको पाकर; **अस्तम् गच्छन्ति**=(उन्हींमें) विलीन हो जाती हैं; **च**=तथा; **आसाम्**=इन सबके; **नामरूपे**=(पृथक्-पृथक्) नाम और रूप; **भिद्येते**=नष्ट हो जाते हैं; **पुरुषः इति एवम्**=फिर 'पुरुष' इस एक नामसे ही; **प्रोच्यते**=पुकारी जाती हैं; **सः**=वही; **एषः**=यह; **अकलः**=कलारहित (और); **अमृतः**=अमर परमात्मा; **भवति**=है; **तत्**=उसके विषयमें; **एषः**=यह (अगला); **श्लोकः**=श्लोक है॥ ५॥

**व्याख्या**—जिस प्रकार भिन्न-भिन्न नाम और रूपोंवाली ये बहुत-सी नदियाँ अपने उद्गमस्थान समुद्रकी ओर दौड़ती हुई समुद्रमें पहुँचकर उसीमें विलीन हो जाती हैं, उनका समुद्रसे पृथक् कोई नाम-रूप नहीं रहता—वे समुद्र ही बन जाती हैं, उसी प्रकार सर्वसाक्षी सबके आत्मरूप परमात्मासे उत्पन्न हुई ये सोलह कलाएँ (अर्थात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) प्रलयकालमें अपने परमाधार परमपुरुष परमेश्वरमें जाकर उसीमें विलीन हो जाती हैं। फिर इन सबके अलग-अलग नाम-रूप नहीं रहते। एकमात्र परमपुरुष परमेश्वरके स्वरूपमें ये तदाकार हो जाती हैं। अत: उन्हींके नामसे, उन्हींके वर्णनसे इनका वर्णन होता है, अलग नहीं। उस समय परमात्मामें किसी प्रकारका संकल्प नहीं रहता। अत: वे सब कलाओंसे रहित, अमृतस्वरूप कहे जाते हैं। इस तत्त्वको समझनेवाला मनुष्य भी उन परब्रह्मको प्राप्त होकर अकल और अमर हो जाता है। इस विषयपर आगे कहा जानेवाला मन्त्र है॥ ५॥

**अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः।**
**तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति॥ ६॥**

**रथनाभौ**=रथ-चक्रकी नाभिके आधारपर; **अराः इव**=जिस प्रकार अरे स्थित होते हैं (वैसे ही); **यस्मिन्**=जिसमें; **कलाः**=(ऊपर बतायी हुई सब) कलाएँ; **प्रतिष्ठिताः**=सर्वथा स्थित हैं; **तम् वेद्यम् पुरुषम्**=उस जाननेयोग्य (सबके आधारभूत) परमपुरुष परमेश्वरको; **वेद**=जानना चाहिये; **यथा**=जिससे (हे शिष्यगण!); **वः**=तुमलोगोंको; **मृत्युः**=मृत्यु; **मा परिव्यथाः इति**=दु:ख न दे सके॥ ६॥

**व्याख्या**—इस मन्त्रमें सर्वाधार परमेश्वरको जाननेके लिये प्रेरणा करके उसका फल जन्म-मृत्युसे रहित हो जाना बताया गया है। महर्षि पिप्पलाद अपने शिष्योंसे कहते हैं—'जिस प्रकार रथके पहियेमें लगे रहनेवाले सब अरे उस पहियेके मध्यस्थ नाभिमें प्रविष्ट रहते हैं, उन सबका आधार नाभि है—नाभिके बिना वे टिक ही नहीं सकते, उसी प्रकार ऊपर बतायी हुई प्राण आदि सोलह कलाओंके जो आधार हैं, ये सब कलाएँ जिनके आश्रित हैं, जिनसे उत्पन्न होती हैं और जिनमें विलीन हो जाती हैं, वे ही जाननेयोग्य परब्रह्म परमेश्वर हैं। उन सर्वाधार परमात्माको जानना चाहिये। उन्हें जान लेनेके बाद तुम्हें मौतका डर नहीं रहेगा, फिर मृत्यु तुमको इस जन्म-मृत्युयुक्त संसारमें डालकर दुःखी नहीं कर सकेगी। तुमलोग सदाके लिये अमर हो जाओगे'॥ ६॥

**तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद। नातः परमस्तीति॥ ७॥**

**ह**=(तत्पश्चात्) उन प्रसिद्ध महर्षि पिप्पलादने; **तान् उवाच**=उन सबसे कहा; **एतत्**=इस; **परम् ब्रह्म**=परम ब्रह्मको; **अहम्**=मैं; **एतावत्**=इतना; **एव**=ही; **वेद**=जानता हूँ; **अतः परम्**=इससे पर (उत्कृष्ट तत्त्व); **न**=नहीं; **अस्ति इति**=है॥ ७॥

**व्याख्या**—इतना उपदेश करनेके बाद महर्षि पिप्पलादने परम भाग्यवान् सुकेशा आदि छहों ऋषियोंको सम्बोधन करके कहा—'ऋषियो! इन परब्रह्म परमेश्वरके विषयमें मैं इतना ही जानता हूँ। इनसे पर अर्थात् श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है।' मैंने तुमलोगोंसे उनके विषयमें जो कुछ कहना था, वह कह दिया॥ ७॥

**सम्बन्ध**—*अन्तमें कृतज्ञता प्रकट करते हुए वे शिष्यगण महर्षिको बारम्बार प्रणाम करते हुए कहते हैं—*

**ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः॥ ८॥**

**ते**=उन छहों ऋषियोंने; **तम् अर्चयन्तः**=पिप्पलादकी पूजा की (और कहा); **त्वम्**=आप; **हि**=ही; **नः**=हमारे; **पिता**=पिता (हैं); **यः**=जिन्होंने; **अस्माकम्**=हमलोगोंको; **अविद्यायाः परम् पारम्**=अविद्याके दूसरे पार; **तारयसि इति**=पहुँचा दिया है; **नमः परमऋषिभ्यः**=आप परम ऋषिको नमस्कार है; **नमः परमऋषिभ्यः**=परम ऋषिको नमस्कार है॥ ८॥

**व्याख्या**—इस प्रकार आचार्य पिप्पलादसे ब्रह्मका उपदेश पाकर उन छहों ऋषियोंने पिप्पलादकी पूजा की और कहा—'भगवन्! आप ही हमारे वास्तविक पिता हैं, जिन्होंने हमें इस संसार-समुद्रके पार पहुँचा दिया। ऐसे गुरुसे बढ़कर दूसरा कोई हो ही कैसे सकता है। आप परम ऋषि हैं, ज्ञानस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है। अन्तिम वाक्यकी पुनरावृत्ति ग्रन्थकी समाप्ति सूचित करनेके लिये है॥ ८॥

**॥ षष्ठ प्रश्न समाप्त॥ ६॥**

**॥ अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् समाप्त॥**

## शान्तिपाठ

**ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥**
**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।**
**स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥**
**ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!**

[इसका अर्थ प्रश्नोपनिषद्के आरम्भमें दिया जा चुका है।]